प्रेक्षाध्यान

स्वास्थ्य-विज्ञान

भाग- 1

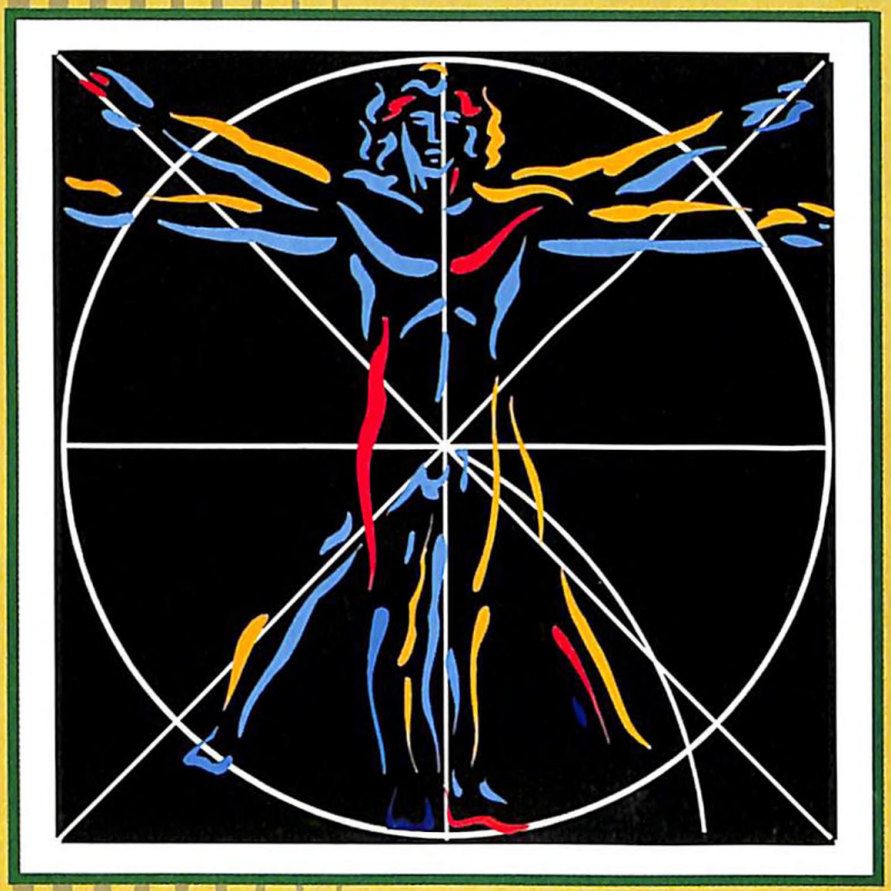

मुनि महेन्द्र कुमार
जेठालाल झवेरी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रेक्षा-ध्यान : स्वास्थ्य विज्ञान
भाग—१

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जीवन-विज्ञान ग्रन्थमाला—३

प्रेक्षा-ध्यान : स्वास्थ्य विज्ञान
भाग—१

मुनि महेन्द्र कुमार
जेठालाल झवेरी

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जीवन विज्ञान ग्रन्थमाला—३

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
लाडनूं-३४१३०६ (राजस्थान)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2004

मूल्य : २० रु०

मुद्रक : सन्मति प्रिंटिंग सर्विसेज, शाहदरा, दिल्ली-32

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रकाशकीय

प्रेक्षा-ध्यान ध्यानाभ्यास की एक ऐसी पद्धति है, जिसमें प्राचीन दार्शनिकों से प्राप्त बोध एवं साधना-पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया गया है। इन दोनों तुलनात्मक विवेचनों के आधार पर आज युग-मानस को इस प्रकार से प्रेरित किया जा सकता है, जिससे मनुष्य के पाशवी आवेश तिरोहित हों एवं विश्व में अहिंसा, शान्ति और आनन्द के प्रस्थापन के मंगलमय लक्ष्य की संप्राप्ति हो सके।

दुनिया के चिकित्सालयों में भीड़ करने वाले लाखों-लाखों दुर्भाग्यशाली बीमारों में से कितने इस बात को जानते हैं कि उनके शरीर में ऐसी क्या खराबी उत्पन्न हुई जिससे वे व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं? उनके शरीर का कौन-सा तंत्र सही क्रिया करने में अक्षम हो गया? यह ठीक है कि उच्च रक्तचाप जैसी मनःकायिक बीमारियों को दबाने के लिए औषधि-निर्माताओं के द्वारा चामत्कारिक दवाओं का निर्माण किया गया है, पर क्या हजारों-हजारों उच्च रक्तचाप के बीमारों में से कोई इस बात को जानते थे कि इस भयंकर बीमारी को रोका जा सकता था।

वर्तमान-युगीन नागरिक-जीवन में स्वास्थ्य-संबंधी अनेक खतरे उत्पन्न होते रहते हैं, जैसे—कारों और ट्रकों से निकलने वाले धुएं, औद्योगिक कारखानों से फैलने वाली कालिख और अन्य गंदगियां, तैल और विषैले रसायनों की वाष्प आदि-आदि। इन असंख्य प्रकार के प्रदूषणों के द्वारा प्रतिदिन जन-स्वास्थ्य को अविरल रूप से हानि पहुंचाई जा रही है। भीड़-भरे शहरों से यातायात आदि तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियां जन-जीवन के नित्य-क्रम में अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। संकुलित निवास-व्यवस्था एवं स्वल्प स्वस्थ वायु-संचार (ventilation) — इन सब परिस्थितियों में 'अग्नि में घृत का कार्य' करते हैं। परिणाम यह होता है कि कभी-कभी लोग इन प्रदूषणों या रोगजनक परिस्थितियों के घातक प्रभाव से आहत हो ही जाते हैं। यह स्पष्ट लग रहा है कि इन वातावरण-जन्य परिस्थितियों में हमारे जीवन-काल में तो कोई सुधार आने की संभावना नहीं है। ऐसी स्थिति में क्या हम वातावरण के द्वारा विनष्ट ही होने वाले हैं या हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले उसके उग्र एवं भीषण प्रभावों से हम अपने आपको बचाने के लिए सक्षम हो सकते हैं? हां, सौभाग्य से हम अपने आपको बचाने में सक्षम हो सकते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इस क्षमता का उपयोग करने के लिए सर्वप्रथम हमें शरीर के विभिन्न तन्त्रों की अभिक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना होगा। "प्रेक्षा-ध्यान-शरीर-विज्ञान" पुष्प में हम मानव-शरीर की रचना (Anatomy) तथा उसके क्रिया-कलाप (Physiology) सम्बन्धी चर्चा कर चुके हैं। प्रस्तुत पुष्प में स्वास्थ्य-बोध के विविध पहलुओं की चर्चा की गई है। स्वास्थ्य-बोध की चर्चा के विस्तार को देखते हुए उसे दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में श्वास, आहार, चयापचय, शिथिलीकरण (relaxation), भावनात्मक स्वास्थ्य आदि पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है तथा द्वितीय भाग में विविध प्रकार के रोग, उनके कारण और रोकथाम, वयोविकास, बुढ़ापा और मृत्यु आदि पहलुओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

यह बताना अनावश्यक होगा कि प्रस्तुत पुष्प में चर्चित विषय का तात्पर्य तभी स्पष्ट होगी जबकि पाठक शरीर-रचना और क्रियाकलाप सम्बन्धी प्राथमिक बोध प्राप्त कर चुके होंगे। इसलिए उक्त पुष्प (जीवन-विज्ञान ग्रन्थमाला-पुष्प ३) पहले पठितव्य है।

प्रस्तुत पुस्तिका में किया गया विनम्र प्रयत्न उन सबकी सेवा में समर्पित है जो अपने शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए अन्तिम श्वास तक कर्मठ, उत्साही, तेजस्वी एवं उपयोगी जीवन जीना चाहते हैं।

युगप्रधान तुलसी एवं उनके उत्तराधिकारी गणाधिपति आचार्य श्री महाप्रज्ञ के सतत मार्गदर्शन एवं परिश्रम का ही परिणाम है कि आज सहस्र-सहस्र लोग आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर चल कर समस्याओं से मुक्त जीवन जीने का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। प्रेक्षा-ध्यान-पद्धति के रूप में मानव-जाति को इन दो महान् अध्यात्म-मनीषियों का अनुपम वरदान प्राप्त हुआ है। हमें दृढ़ विश्वास है कि इस सार्वभौम एवं सार्वजनीन विधि को समझकर साधना करने वाला प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित होगा।

—जेठालाल एस. झवेरी
विभागाधिपति
तुलसी अध्यात्म नीडम्
जैन विश्व भारती, लाडनूं

१७ अप्रैल, १९८४
लाडनूं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भूमिका

व्याधियां और रोग न जाने कब से मानव-जीवन के स्वास्थ्य-रस को किरकिरा करते आ रहे हैं। अभूतपूर्व जनसंख्या-वृद्धि, यन्त्रीकरण-जनित द्रुत जीवन और तेजी से बदलती हुई जीवन-पद्धतियां—इन सब आधुनिक युग के परिवेशों के कारण जन-स्वास्थ्य और अधिक नाजुक दौर से गुजर रहा है। यह स्पष्ट है कि राकेट युग के वेगवान् यानों ने समग्र जीवन-पद्धति को अत्यधिक शीघ्रगामी बना दिया है। दूसरी ओर मनुष्य के भोजन एवं वस्त्र रासायनिक पदार्थों के प्रयोग के कारण न केवल अप्राकृतिक और कृत्रिम बनते जा रहे हैं, अपितु अनेक दृष्टियों से हानिकारक भी हैं। इस प्रकार सारे आधुनिक जीवन-क्रम के कारण मानव-स्वास्थ्य के सम्बन्ध में नई-नई समस्याओं के अंबार लगते जा रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य-विज्ञान के महत्त्व एवं उपयोगिता में असाधारण वृद्धि हुई है।

स्वास्थ्य-विज्ञान की पृष्ठभूमि में शरीर-विज्ञान की जानकारी अनिवार्य है। **'प्रेक्षा-ध्यान शरीर-विज्ञान'** नामक पुष्प में हम शरीर-रचना एवं प्रमुख शारीरिक तन्त्रों के क्रियात्मक स्वरूप की विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। प्रस्तुत पुष्प में हम मनुष्य के स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य से सम्बद्ध कुछ पहलुओं की चर्चा करेंगे।

आहार-विज्ञान, स्वास्थ्य के शत्रु आदि प्रकरणों में उक्त समस्याओं के समाधान पर विस्तार से चर्चा की गई है।

हमारे शरीर के आन्तरिक अवयवों के क्रियातन्त्र का ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उनकी अस्तव्यस्तता एवं उनके प्रति होने वाले हमारे दुर्व्यवहार की जानकारी। सबसे पहले तो हम आहार के बारे कुछ मौलिक बातों का ज्ञान करें, जैसे—हमें क्या खाना चाहिए, हमारे आहार का हमारे पाचन-तंत्र पर—विशेषत: यकृत पर—क्या प्रभाव होगा आदि। अधिक चर्बीयुक्त पदार्थ, शराब का सेवन किस प्रकार मनुष्य के यकृत और पित्त की थैली को हानि पहुंचाता है? दूसरी बात, जिस प्रकार बाह्य स्वच्छता के उपक्रम — स्नान, दांत साफ करना आदि—सामान्य सभ्यता या शिष्टता के मानदण्ड हैं, उसी प्रकार आन्तरिक अवयवों की सफाई का अच्छे स्वास्थ्य के सूचक के रूप में मूल्यांकन करना होगा। बहुत सारे लोग बदहजमी, कब्जी या पित्तप्रकोप को पेट की गड़बड़ी मानकर बाजारू विज्ञापनों के आधार पर जुलाब की गोलियां या पाचक चूर्ण आदी का सेवन करते हैं। ये बाजारू औषधियाँ विवेचनात्मक क्रिया के द्वारा एक बार तात्कालिक राहत-सी दिलाती हैं, पर जिन गड़बड़ियों का उपचार करने के लिए उनका सेवन किया जाता है, उनको मूल रूप से समाप्त करने में ये अक्षम सिद्ध होती हैं। व्यक्ति पुन: पुन: उन्हीं का सेवन कर उनका आदि बन जाता है और अपने शरीर के तन्त्रों को अस्त-व्यस्त कर देता

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

है। इसलिए जुलाब या चूर्ण के द्वारा कब्जी आदि का उपचार करने की अपेक्षा आहार-विवेक, योगासन, योग-व्यायाम, शौच की नियमितता जैसे उपायों से इन गड़बड़ियों की रोकथाम कैसे की जा सकती है, यह सीखना अधिक हितकारी है। "उपचार की अपेक्षा निरोध बेहतर है" की उक्ति को चरितार्थ किया जाय। यकृत की क्षति, दांतों का अपचय, अमाशय के शोथ और फुप्फुस के प्रदूषण की रोकथाम की जाए। ये सारी गड़बड़ियां गलत आहार-व्यवहार से ही होती हैं।

मनुष्य-जाति का सौभाग्य है कि आज विज्ञान ने मनुष्य-शरीर के विषय में अधिक तलस्पर्शी ज्ञान करने तथा साथ ही साथ रोग और वृद्धावस्था का प्रतिकार करने के लिए उसे प्रचुर मात्रा में अभूतपूर्व साधन-सामग्री उपलब्ध कराई है। एतद्विषयक जानकारी से व्यक्ति स्वास्थ्य-रक्षा की दिशा में लाभान्वित हो सकता है।

क्या आप जानते हैं ?

—कि हमारे शरीर की क्रियाओं का सम्यक् संचालन करने के लिए हमें ४० से भी अधिक मौलिक तत्त्वों (elements) की आवश्यकता होती है, जिनकी पूर्ति आहार के माध्यम से की जाती है।

—कि दूध के पास्तुरीकरण (आंशिक निर्जीवीकरण) के द्वारा उसमें विद्यमान विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है।

—कि एण्टीबायोटिक औषधियां हमारे शरीर में—आंतों में बसी हुई उन बैक्टेरियों (जीवाणुओं) की बस्तियों का सफाया कर देती हैं, जो मित्रवत् निरन्तर हमारे शरीर में उन विटामिनों को पहुंचाते हैं, जिनकी उत्पत्ति उन जीवाणुओं के अभाव में बंद हो जाती है।

—कि नियमित शारीरिक श्रम और योग कार्यक्रम प्रभावशाली ढंग से बुढ़ापा की प्रक्रिया को मंद करते है।

—कि स्वकल्पकालिक विधिपूर्वक (विज्ञान-सम्मत) कायोत्सर्ग (जागरूकतापूर्वक शिथिलीकरण) दीर्घकालिक निद्रा की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक स्फूर्ति और ऊर्जा प्रदान कर सकता है ?

और अन्त में—

—कि मनुष्य में क्रूरता, घृणा, प्रतिशोध आदि मानसिक विकृतियां और पाशवी व्यवहार कौन पैदा करता है ? तथा—

— कि ध्यानाभ्यास एक अबौद्धिक भावावेश या मजहबी क्रियाकांड नहीं, अपितु भावनात्मक स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाने के लिए एक वैज्ञानिक मनश्चिकित्सा का सुचिंतित मानसिक प्रयोग है।

प्रस्तुत पुस्तिका में स्वास्थ्य और रोग, बुढ़ापा और मृत्यु आदि के सम्बन्ध में उठने वाले इस प्रकार के बीसों ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है जो व्यक्ति को व्यथित बना देते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अनुक्रम

१.	श्वास कैसे लें ?	१—११
२.	ॐ और अर्ह-ध्वनि	१२—१३
३.	जीवन का रासायनिक स्वरूप	१४—१८
४.	आहार-विज्ञान	१९—३६
५.	चयापचय	३७—४३
६.	स्वास्थ्य के शत्रु	४४—५१
७.	तनाव मुक्ति	५२—५९
८.	भावनात्मक स्वास्थ्य है स्वास्थ्य की कुंजी	६०—६६
	परिशिष्ट १ शरीर में उपयोगी कुछ महत्वपूर्ण खनिज	६७—६८
	परिशिष्ट २ शरीर में उपयोगी कुछ महत्वपूर्ण विटामिन	६९—७०

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१
श्वास कैसे लें?

श्वास लेना ही जीना है

आदमी बिना खाए अनेक दिनों तक जी सकता है, बिना पानी पीए भी कुछ दिन निकाल सकता है, पर श्वास लिए बिना तो चंद मिनटों से अधिक नहीं जी सकता। इस प्रकार भोजन-पानी की तुलना में श्वास जीवन के लिए अधिक मूल्यवान ऊर्जा-स्रोत है। वस्तुतः तो श्वास ही जीवन है। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया श्वसन के साथ गाढ़ रूप से जुड़ी हुई है।

श्वसन-क्रिया का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है—शरीर की कोशिकाओं के लिए ऑक्सीजन की आपूर्ति करना और दूसरा है—कोशिकाओं से निःसृत कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकाल देना। कोशिकाओं में ऊर्जा-उत्पादन के लिए ऑक्सीजन की निरंतर आवश्यकता होती है तथा ऊर्जा-उत्पादन की क्रिया के साथ-साथ कार्बन-डाइ-ऑक्साइड पैदा हो जाता है जिसको यदि शरीर के भीतर एकत्रित होने दिया जाय, तो उससे कोशिकाएं विषाक्त हो जाएँगी।

सम्यक् श्वास के सर्वोपरि महत्त्व को किसी भी प्रकार उपेक्षित नहीं किया जा सकता। पर, दुर्भाग्य से बहुत थोड़े ही लोग सही और पूरा श्वास लेते हैं। शेष सभी गलत ढंग से ही श्वास लेते हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि आज का आम आदमी श्वास नहीं ले रहा है, किन्तु केवल घुटन को दूर करने की ही कोशिश करता है। दुर्बल स्वास्थ्य के अनेक लक्षण रक्त की अपर्याप्त ऑक्सीजन-आपूर्ति तथा मन्द परिसंचार के परिणाम हैं। जो गलत ढंग से श्वास लेते हैं, उनको चारों दिशाओं में स्वास्थ्य, व्यवसाय, भावात्मक जीवन आदि से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हम न केवल गलत ढंग से श्वास लेते हैं, अपितु बहुत बार जो श्वास लिया जाता है, वह भी अशुद्ध एवं दूषित होता है। परिणामस्वरूप हमारी स्नायविक दुर्बलता और उत्तेजकता बढ़ती है और थोड़े से ही शारीरिक श्रम को हम बर्दाश्त नहीं कर पाते। सबसे बुरी बात यह होती है कि रोगों का प्रतिकार करने की हमारी शक्ति में भारी कमी हो जाती है और रोगाणुओं एवं दोषों के द्वारा अभिभूत होने की हमारी स्थितियों में वृद्धि हो जाती है। सही श्वसन-क्रिया से फुप्फुसों का पूर्णतः वात-विनयन हो जाता है जिससे टी.बी. जैसी बीमारियों से हम अपने आप को बचा सकते हैं। यह कैसे हो सकता है, इसकी चर्चा हम आगे के पृष्ठों में कर रहे हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

श्वसन-प्रक्रिया

फुप्फुस अपने आप में मांसपेशी-रहित होते हैं। अत: श्वसन-प्रक्रिया में आवश्यक यांत्रिक क्रिया में उनका सीधा योगदान नहीं मिलता। यह यांत्रिक बल तीन प्रकार से उपलब्ध हो सकता है—

(१) तनुपट (डायाफ्राम) को ऊपर-नीचे खिसका कर,

(२) अन्तर्पर्शुकीय मांशपेशियों के संकुचन-विस्तरण के द्वारा,

(३) हंसली के हिस्से को ऊपर-नीचे खिसका कर।

फुप्फुसीय खाने में विद्यमान थोड़े-से शून्यावकाश के कारण प्रत्येक प्रश्वास और निःश्वास के साथ फुप्फुसों का विस्तार और संकुचन किया जा सकता है।

जब श्वास लेना प्रारम्भ किया जाता है, तब फुप्फुस के भीतर वायु का दबाव उतना ही होता है जितना बाहरी वातावरण में होता है (जो कि पारे के ७६० मिलीमीटर जितना होता है)। तब अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियां संकुचित होती हैं जिससे पिंजड़ानुमा पसली का ढांचा ऊपर और बाहर की ओर खिसकता है। उसी समय तनुपट सिकुड़ता है और नीचे की ओर खिसकता है। इस प्रकार वक्षीय गुहा का परिमाण बड़ा किया जाता है और भीतर का हवा का दबाव पारे के २ या ३ मिलीमीटर जितना कम होता है। बाहर और भीतर की हवा के दबाव में संतुलन बनाने के लिए बाहर से हवा फुप्फुस के भीतर प्रवेश करती है। तनुपट और अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियों के विस्तृत होने के साथ ही प्रश्वास की क्रिया समाप्त होती है। वक्षीय परिमाण घटना शुरू होता है। भीतर का दबाव २ मिलीमीटर जितना बढ़ जाता है और काम में ली गई हवा भीतर से पुनः बाहर ढकेल दी जाती है।

श्वास-प्रकोष्ठों में भरी गई ताजी वायु में ऑक्सीजन का तनाव १०० मिलीमीटर होता है तथा उसमें कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा नगण्य-सी होती है, जबकि प्रकोष्ठों के आस-पास की कोशिकाओं में रक्त के भीतर ऑक्सीजन का तनाव ४० मिलीमीटर तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का तनाव ४६ मिलीमीटर होता है। इनमें सन्तुलन बनाने के लिए कार्बन-डाइ-आक्साइड वायु प्रकोष्ठों में प्रविष्ट हो जाती है और ऑक्सीजन कोशिकाओं के रक्त में चला जाता है। ऑक्सीजन की परिपूर्ण मात्रावाला रक्त, जिसमें ऑक्सीजन का तनाव १०० मिलीमीटर तथा संतृप्ति शत-प्रतिशत होती है, फुप्फुस से हृदय के बायें हिस्से तथा आगे महाधमनी के लिए प्रस्थान करता है। रक्त में विद्यमान हेमोग्लोबीन नामक रासायनिक पदार्थ जो रक्त की लाल कोशिकाओं में भरा हुआ होता है और खून को लाल रंग से रंजित करता है, ऑक्सीज़न के साथ

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

श्वसन – तन्त्र (चित्र नं. १)

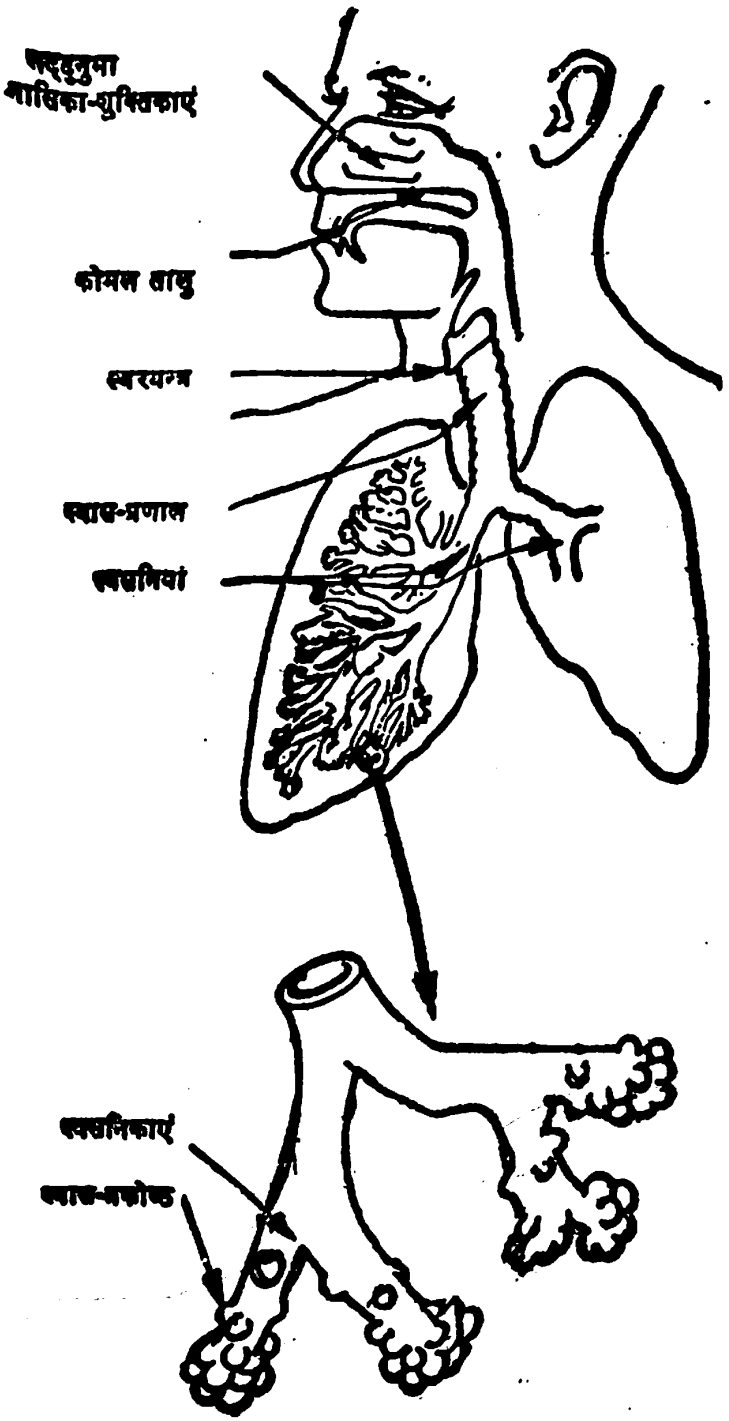

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

श्वसन – क्रिया में प्रयुक्त मांसपेशियां (चित्र नं. २)

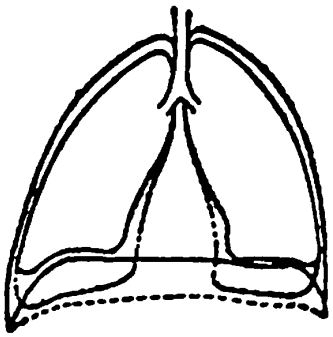

जब तनुपट नीचे की ओर सिकुड़ता है तब वक्ष की गहराई बढ़ती है।

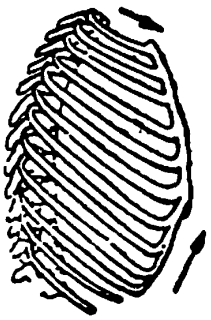

अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियां पसली को ऊपर उठाती है तथा वक्ष के आगे-पीछे का व्यास बढ़ाती है। इस प्रकार पसली-पिञ्जर की चौड़ाई बढ़ जाती है।

संयोजित होता है और कोशिकाओं तक उसे पहुंचा देता है। फुप्फुस में घटित ऑक्सीजनीकरण की रासायनिक प्रक्रिया से जामुनी-सा हेमोग्लोबीन तुरन्त चमकीले लाल ऑक्सी-हेमोग्लोबीन के रूप में बदल जाता है। कोशिकाओं तक ऑक्सीजन को पहुंचाने का दायित्व हृदय पर होता है, जो पम्पिंग के द्वारा ऑक्सीजनयुक्त हेमोग्लोबीन वाले रक्त को शरीर के समस्त भागों तक पहुंचा देता है। आंतरिक श्वसन-क्रिया शरीर के विभिन्न भागों में क्रियाशील ऊतकों के भीतर घटित होती है। इस क्रिया के दौरान हेमोग्लोबीन से मुक्त होकर ऑक्सीजन-स्कन्ध, ऊतकों को उपलब्ध किए जाते हैं तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड-स्कन्ध रक्त में मिलाकर वापिस फुप्फुस की ओर भेज दिये जाते हैं। यदि ऑक्सीजन का तनाव पारे के ४० मिलीमीटर से कम हो जाता है, तो रक्त में ऑक्सीजन की संतृप्ति में एकदम गिरावट आ जाती है। ऐसी स्थिति में ऊतकों को उपलब्ध होने वाले ऑक्सीजन की मात्रा शून्य हो जाती है तथा ऊतकों की मृत्यु संभावित हो जाती है।

जहां शरीर की अधिकांश महत्त्वपूर्ण प्रणालियों का नियमन स्वतः (अनैच्छिक) नियन्त्रण से किया जाता है, जिसमें हृदय की गति मुख्य रूप से उल्लेखनीय है, वहां श्वसन-क्रिया का नियमन ऐच्छिक और अनैच्छिक दोनों प्रकारों से हो सकता है। सामान्य रूप से चलने वाले लयबद्ध श्वास-प्रक्रिया को श्वसन-मांसपेशियां एवं फुप्फुस तन्त्रिकाओं के माध्यम से श्वसन-केन्द्र (जो आयताकार अन्तःस्था में स्थित है) को फीड-बैक पद्धति द्वारा सूचना भेजकर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

चालू रखा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रभावों द्वारा ऐच्छिक क्रिया के द्वारा भी इसे (श्वसन-केंद्र को) प्रभावित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति अपने श्वास को कुछ देर के लिए ऐच्छिक रूप से रोक भी सकता है। श्वसन-केन्द्र और ग्रीवा-धमनी में से गुजरने वाले रक्त में विद्यमान कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा एवं रक्त के ऑक्सीजनीकरण तथा अम्लता में हानि-वृद्धि के प्रति यह केन्द्र संवेदनशील होता है। श्वसन-केन्द्र से उठने वाली लयबद्ध उत्प्रेरणाएं सुषुम्ना-मार्ग से अन्तर्पर्शुकीय माँसपेशियों एवं तनुपट तक पहुंचती रहती हैं। रक्त में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा और अम्लता जब बढ़ती है, तब श्वसन-केन्द्र अधिक सक्रिय होता है। इसके परिणाम स्वरूप उपर्युक्त उत्प्रेरणाएं और अधिक तेज हो जाती हैं, जिससे शरीर की अन्य क्रियाओं के साथ श्वास की गति, लय एवं गहराई का सामंजस्य हो सके।

श्वसन की कला: सम्यक् श्वास का महत्त्व

सम्यक् श्वसन-क्रिया में श्वास नाक से आता है और मुंह बंद रखा जाता है। ऐसा करने से हवा में रहे हुए कीटाणु, रजें तथा अन्य प्रदूषण नासिकाओं के भीतर रही हुई श्लेष्म-झिल्ली की स्निग्धता के कारण तथा नाक में स्थित बालों के कारण वहां रोक दिये जाते हैं। इस प्रकार भीतर जाने वाला श्वास छन जाता है। श्लेष्म में छानने के साथ-साथ कीटाणुनाशक गुण भी होता है। हवा की शुद्धि के अतिरिक्त उसको आर्द्र तथा शरीर के तापमान जितना उष्ण बनाने का कार्य भी नाक के लम्बे मार्ग में संपादित होता है। इसलिए सदा नाक से श्वास लेने की आदत डालना आवश्यक है। मुंह से श्वास कभी नहीं लेना चाहिए।

सम्यक् श्वसन में दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्वास को भीतर लेते समय पेट को भीतर डालने की बजाय बाहर फुलाना चाहिए। सामान्य रूप से लोग श्वास लेते समय पेट को सिकोड़ते हैं, जो ठीक नहीं है। उसी प्रकार श्वास छोड़ते समय पेट को सिकोड़ना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास प्रारम्भ में लेटकर करना आसान होता है।

एक दिन में औसतन व्यक्ति २३००० श्वासोच्छ्वास लेता है। सामान्य रूप से व्यक्ति एक श्वास के दौरान १/२ से १ लीटर हवा भीतर लेता है। किन्तु सही अभ्यास के द्वारा इस मात्रा को ४ से ५ लीटर तक बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो ऑक्सीजन ग्रहण करने तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को बाहर निकालने की अपनी शारीरिक शक्ति को हम अपने श्वसन-तंत्र के सम्यग् नियोजन के द्वारा चार से पांच गुनी बढ़ा सकते हैं। हममें से अधिकांश लोग छोटे-छोटे टुकड़ों में छिछला श्वास लेते हैं, जिसकी संख्या लगभग १५ से १८ प्रति मिनट होती है। हम अपने छिछले-छोटे

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

श्वास के कारण किसी प्रकार की घुटन जैसी असुविधा अनुभव नहीं करते हैं, इसलिए हमें अपने श्वास के छिछलापन का कोई पता नहीं चलता। प्रशिक्षण के द्वारा हम मन्द एवं लम्बा-गहरा श्वास लेने का अभ्यास बढ़ा सकते हैं। श्वास की गति को मन्द करने से एक मिनट में चार या पांच श्वास तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार प्रति मिनट में आने वाली श्वास की संख्या में २५% से ३३% तक कमी की जा सकती है।

मन्द श्वास के द्वारा हमें अनेक लाभ होते हैं, जैसे–

१. सारे शरीर में होने वाली टूट-फूट की गति में मंदता,

२. हृदय के कार्य-भार में कमी,

३. रक्त-चाप में अनावश्यक वृद्धि को रोकना,

४. स्नायविक शांति में वृद्धि।

पूरा श्वास

गलत या अधूरे श्वास तथा वैज्ञानिक दृष्टि से पूरे श्वास में जो अन्तर है, वह श्वास लेने की पद्धति और उसके प्रयोग से सम्बन्धित है।

वैज्ञानिक दृष्टि से पूरे श्वास की पहली शर्त यह है कि श्वसन सम्यग् होना चाहिए। वस्तुत: तो यह सभी को फिर से सीखने की बात है, क्योंकि बाल्यकाल में जाने-अनजाने सम्यक् श्वसन का प्रयोग ही होता है। बड़े होने के बाद श्वसन प्राय: अधूरा, उतावला, छिछला एवं कभी-कभी तो केवल हांफने-जैसा होता है, क्योंकि व्यक्ति निरन्तर दबावों और तनावों से ग्रस्त बना रहता है। अत: यह युक्तियुक्त है कि सम्यक् श्वसन का पहला आधार तनाव-मुक्ति है। पेट की मांसपेशियों का कड़ापन प्राय: सम्यक् श्वसन में बाधा उत्पन्न करता है। तंग या चुस्त कमर-बन्द आदि वस्त्रों के द्वारा फुप्फुस में हवा के प्रवेश में जितनी बाधा नहीं होती, उतनी या उससे भी अधिक गतिहीन तनुपुट एवं कठोर पसली-पिंजर के कारण होती है। इसलिए पहला कदम यही है कि मांसपेशियों को पहले शिथिल कर आन्तरिक तंगावस्था को दूर किया जाय।

उच्छ्वसन और नि:श्वसन

वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण श्वसन का प्रारम्भ मन्द, शांत एवं पूरे उच्छ्वसन के साथ होता है। अन्त:श्वसन समाप्त होने पर जब उसके लिए प्रयुक्त मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं, तब विकसित छाती का हिस्सा अपने भार से ही सिकुड़ जाता है और भीतर की हवा बाहर निकलनी शुरू हो जाती है। उसके बाद पेट की मांसपेशियों को संकुचित करने से तनुपुट ऊपर की ओर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

खिसकता है, जिससे फुप्फुस में से और अधिक हवा निष्कासन करने में सहायता होती है। फुप्फुसीय ऊतकों की स्पंजी रचना के कारण प्रयुक्त हवा का अंश भीतर रह जाता है। यह अवशिष्ट हवा अन्तःश्वसन के द्वारा ताजी प्रविष्ट हवा के साथ मिलकर आगे की प्रक्रिया के प्राप्य हवा के रूप में काम आती है। फुप्फुसों को जितना अधिक खाली किया जाएगा, उतना ही उनमें ताजी हवा का प्रवेश अधिक मात्रा में हो सकेगा और श्वास-प्रकोष्ठों में उपयोगार्थ हवा उतनी ही अधिक विशुद्ध या अमिश्रित रह सकेगी। अतः जब तक हम पूरी तरह उच्छ्वसन नहीं करते, तब तक अन्तर्श्वसन पूरा और सम्यक् नहीं हो सकता।

अन्तर्श्वसन

फुप्फुसों को खाली करने के बाद दूसरा कदम उन्हें अधिक से अधिक भरने का है। फुप्फुसों में समाने वाली हवा की मात्रा को फुप्फुसीय क्षमता अथवा प्राण-क्षमता कहते हैं। औसतन रूप में यह लगभग ६ लीटर है। इस क्षमता को बढ़ाने की बात करने से पहले प्राप्त क्षमता का पूरा उपयोग कैसे हो सकता है, यह चिन्तन आवश्यक है।

फुप्फुस के इर्द-गिर्द श्वसन-क्रिया में उपयोगी तीन प्रकार की मांसपेशियों का उल्लेख किया जा चुका है। ये तीन प्रकार की मांसपेशियां हैं—

१. अन्तरापर्शुक मांसपेशियां— ये पसलियों के ऊपर के और नीचे के छोर से संलग्न होती हैं। इन मांसपेशियों के संकुचित होने पर पसलियों का समूचा ढांचा ऊपर तथा बाहर की ओर फैलता है और इनके शिथिल होने पर उससे विपरीत दिशा में पसलियों का ढांचा गति करता है—संकुचित होता है।

तनुपट (डायाफ्राम) — श्वसन-क्रिया में उपयोगी मांसपेशियों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका आकार गुम्बज जैसा होता है। यह मांसपेशी वक्षीय गुहा के फर्श या तल के रूप में तथा उदरीय गुहा की छत के रूप में होती है। जब इसे संकुचित किया जाता है, यह उदरीय अंगों को नीचे की ओर दबाती है तथा वक्षीय गुहा के परिणाम को बढ़ाती है। (देखें चित्र नं. २)

हंसली की मांसपेशियां—हंसली को ऊपर की ओर उठाकर इन मांसपेशियों का संचालन किया जा सकता है। इस क्रिया के द्वारा फुप्फुस के ऊपर के हिस्से में हवा का प्रवेश होता है।

पूरे लम्बे-गहरे अन्तर्श्वसन के लिए उक्त तीनों प्रकार की मांसपेशीय-समूह का संयुक्त उपयोग किया जाता है। यह क्रिया एक ही बार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में एवं लयबद्ध रूप से की जानी चाहिए। हवा का भीतर प्रवेश निरन्तर होना चाहिए, बीच-बीच में हांफना नहीं चाहिए।

पूरे श्वसन की अभ्यास-विधि

इस अभ्यास-विधि को सीखने की सर्वोत्तम मुद्रा है—किसी कड़ी भूमि या तख्त पर चटाई या कम्बल बिछा उसके ऊपर सीधे लेटकर यह अभ्यास करें। दोनों हाथों को शरीर के समानान्तर रखें एवं पैरों को सीधे रखें, पर अकड़न न हो। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि चित्त को पूर्णतः अपनी श्वसन-क्रिया पर एकाग्र रखें। एकाग्रता को साधने में आंखों को बन्द रखना सहायक होगा।

अभ्यास क्रम

१. फेफड़ों को मन्द और शान्त उच्छ्वसन के द्वारा धीरे-धीरे खाली करें। पेट की मांसपेशियाँ को संकुचित करने के लिए पेट को भीतर की तरफ खींचें। इस क्रिया के द्वारा तनुपट वक्षीय-गुहा में ऊपर की तरफ उठेगा, जिससे छाती का परिमाण कम होगा तथा उससे अधिकाधिक हवा बाहर निकाली जा सकेगी। अब फेफड़ों के खाली होने पर श्वास को भीतर भरने से पूर्व एक या दो सैकिण्ड रुकें।

२. अब श्वास को भीतर भरने के लिए पेट की मांसपेशियों को शिथिल करें और उन्हें पर्याप्त रूप से फूलने दें, जिससे तनुपट धीरे-धीरे खिसके तथा हवा फुप्फुस के भीतर प्रवेश करे। इस क्रिया में तनुपट चपटा होता जाएगा तथा फेफड़ों के नीचे के हिस्से में हवा भरनी शुरू होगी। पूरे अन्तर्श्वसन (श्वास भीतर भरने) के दौरान पेट की मांसपेशियां शिथिलावस्था में रहनी चाहिए तथा श्वास भरने की क्रिया मन्द, सहज और शांत होनी चाहिए।[१]

३. अब अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियों (पसली के बीच की मांसपेशियों) को खींचकर छाती को फूलने दें। इस क्रिया के दौरान फेफड़ों का मध्यवर्ती हिस्सा भीतर अधिक मात्रा में हवा के प्रवेश के कारण विस्तृत होता है, यद्यपि यह मात्रा पहली क्रिया की अपेक्षा कुछ कम है।

४. इसके बाद अन्त में पसली की हड्डियों की ठुड्डी की तरफ ऊंचा उठाकर फेफड़ों में और अधिक हवा भरें जिससे अन्तर्श्वसन की क्रिया पूर्ण हो। इस क्रिया से फेफड़ों का ऊपरी हिस्सा हवा से भरता है। इस क्रिया में

१. श्वसन-क्रिया समुचित रूप से मन्द हुई है या नहीं, इसका पता उसकी आवाज से लग सकता है। यदि श्वास की आवाज सुनाई देती है, तो उसका अर्थ होता है कि अन्तर्श्वसन की क्रिया में उतावलापन है। उज्जायी प्राणायाम में गले से छूते हुए श्वास की आवाज आती है, वह दूसरी बात है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

केवल थोड़ी-सी हवा ही भीतर प्रविष्ट होती है, इसलिए पूर्वकथित दो क्रियाओं के बाद ही इसे किया जाना उपयोगी होता है।

उक्त तीनों अभ्यास-क्रम के सम्पन्न होने पर फेफड़े पूरी तरह हवा से भर जाते हैं। यह अपेक्षित है कि यह सारा अभ्यास बिना किसी थकान या असुविधा के होना चाहिए। इस पूरी श्वसन क्रिया को अधिक से अधिक एकाग्रता और जानकारी के साथ करना चाहिए। यह पूरे श्वास लेने की आदत धीरे-धीरे सिद्ध हो सकती है और इससे श्वसन की गुणात्मकता क्रमशः बढ़ती जाती है। याद रखें कि उच्छ्वसन एवं अन्तर्श्वसन दोनों क्रियाएं ही शांत, मन्द, निरन्तर और सहज होनी चाहिए।

एक बार अभ्यास-विधि हस्तगत हो जाएगी, फिर आगे के लाभ समय के नियन्त्रण द्वारा प्राप्त किए जा सकेंगे, जिसका क्रम इस प्रकार है—

१. पहला क्रम– श्वसन और उच्छ्वसन के बीच में थोड़ी-सी देर का अन्तराल रखें—कुम्भक करें या श्वास को रोकें। इसकी कालावधि अभ्यास पर आधारित होगी।

२. दूसरा क्रम– श्वास भीतर लेने में जितना समय लगे, उससे श्वास को बाहर निकालने में दुगुना समय लगाएं। प्रारम्भ में अन्तर्श्वसन, कुम्भक और उच्छ्वसन के लिए काल का अनुपात १:१:२ रह सकता है, जिससे धीरे-धीरे बढ़ाकर १:२:२ किया जा सकता है। पर यह ध्यान रखें कि श्वास को जबरदस्ती या उतना अधिक भरना और रोकना हानिकारक होगा, जिससे परेशानी का अनुभव हो।

पूरे श्वसन के लाभ

कोशिकाओं के सुचारु संचालन तथा क्षमता-वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध हो। इसलिए सही रूप से श्वास लेना बहुत ही जरूरी और महत्त्वपूर्ण है, जिससे कि शरीर की प्रत्येक कोशिका को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल सके। फुप्फुसों में वायुओं का आदान-प्रदान भली-भांति तभी हो सकता है जब कि श्वसन-क्रिया गहरी, पूरी और मन्द हो। शरीर वैज्ञानिकों के अनुसार यह आवश्यक है कि संगृहीत हवा श्वास-प्रकोष्ठों में १० से २० सेकिण्ड तक रहे जिसमें कि ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड का अधिकतम विनिमय हो सके।

इस प्राथमिक आवश्यकता के अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि सम्यग् श्वसन के द्वारा हवा के आवागमन से सम्पूर्ण फुप्फुसों की सफाई पूरी तरह हो। अंधकार, ऊष्मा एवं आर्द्रता-युक्त फेफड़ों की सफाई ठीक न होने

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पर वे सूक्ष्म किन्तु खतरनाक कीटाणुओं के प्रजनन के लिए आदर्शभूत बन सकते हैं।

सम्यक् श्वसन या दीर्घ श्वसन और रक्त-परिसंचरण के बीच एक महत्त्वपूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध है जिसे "चूषण का प्रभाव" कहा जाता है। हृदय केवल एक धकेलने वाले पम्प के रूप में कार्य कर सकता है, जिससे धमनियों के जाल में रक्त प्रवाहित किया जाता है। शिराओं में रक्त की गति गुरुत्वाकर्षण की विरोधी दिशा में तथा हृदय की ओर होती है, पर हृदय के शिराओं में बहने वाले रक्त पर किसी प्रकार चूषणात्मक प्रभाव नहीं होता। यदि श्वसन क्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक रूप से की जाए, तो उसके परिणामस्वरूप फुप्फुस में अत्यधिक शक्तिशाली चूषण-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। गहरे और मन्द श्वसन के द्वारा फुप्फुसों में यकृत जैसे अवयवों में एकत्रित अतिरिक्त रक्त खींचने के लिए एक प्रकार की चूषण-शक्ति पैदा होती है। तनुपट और पसली-पिंजर के सम्यग् लयबद्ध स्पन्दन पूरे शरीर में होने वाले शिरीय रक्त-संचार को बेहतर और सक्रिय बनाने में योगदान देते है। इस प्रकार हृदय और फेफड़ों दोनों के संचालक बलों का सम्यक् संयोजन रक्त के परिसंचरण को श्रेष्ठ बना सकता है। ऐच्छिक और सुनियोजित दीर्घ श्वसन के द्वारा प्राणधारा को प्रभावित किया जा सकता है, जिससे शरीर के किसी भी प्रकार के—अवयव सम्बन्धी या क्रिया-सम्बन्धी-विकार या गड़बड़ी को यदि पूर्णतः ठीक नहीं, तो कम से कम प्रभावित तो किया ही जा सकता है और यद्यपि यह प्राणधारा तीव्र आगन्तुक या औपसर्गिक विकारों को पूर्णतः ठीक करने में असमर्थ न भी हो, तो भी शरीर की प्रतिकार-शक्ति को बलवती बनाने में एवं शरीर को विकारों से मुक्त रखने में निश्चय ही महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

"श्वास ही जीवन है" यह उक्ति निःसन्देह यथार्थ है पर सही रूप से श्वास लेना अर्थात् मन्द, शांत और गहरा श्वास लेना दीर्घ और स्वस्थ जीवन है। एक बार पूरे श्वास या दीर्घश्वास की प्रक्रिया हस्तगत हो जाए फिर तो उसका अभ्यास कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है। वस्तुतः तो यह केवल एक व्यायाम नहीं, वरन् आदत या स्वभाव बन जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो दीर्घ श्वसन ही सहज श्वसन बन जाना चाहिए।

अन्य प्राणायाम-प्रयोग

(१) अनुलोम-विलोम प्राणायाम या समवृत्ति श्वास—सुखासन में भूमि पर सीधे बैठें या कुर्सी पर सीधे बैठ, पृष्ठरज्जु को सीधा रखें। मस्तक को स्थिर रखें एवं शरीर को शिथिल करें।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

दायें हाथ के अंगूठे को दायें नथुने पर और अनामिका को बायें नथुने पर रखें तथा तर्जनी और मध्यमा को ललाट पर दोनों भृकुटियों के मध्य में कोमलता से रखें। पहले दाएं नथुने को अंगूठे से थोड़ा-सा दबाकर बन्द करें एवं बाएं नथुने से धीरे-धीरे गहरा श्वास लें। अन्तर्श्वसन (श्वास भीतर भरने) के पूर्ण होने पर बाएं नथुने को बन्द करें। श्वास को खोलें तथा धीरे-धीरे श्वास बाहर निकाल दें। अब दायें से श्वास लें और बाएं से बाहर निकालें। इसी क्रिया को लयबद्धता के साथ बार-बार दोहराएं।

(२) **भस्त्रिका**– भस्त्रिका में तीव्र गति से श्वास भीतर लिया जाता है और बाहर छोड़ा जाता है—लगभग एक सेकिण्ड में एक उच्छ्वसन एवं एक अन्तर्श्वसन हो जाता है। श्वास बाहर निकालते समय पेट की मांसपेशियों को शीघ्र गति से भीतर संकुचित करें। श्वास को भरने और छोड़ने के बाद ही विराम किया जा सकता है, बीच में नहीं। कुछ देर अभ्यास के बाद ही एक सैकिण्ड के समय तक पहुंच सकते हैं, प्रारंभ में समय-नियन्त्रण की अपेक्षा विधि पर ही अधिक ध्यान दें।

(३) **कपालभाति**– महस-लम्बा श्वास भीतर लें और छोड़ते समय छोटे-छोटे झोंको में बाहर निकालें। प्रत्येक श्वास के साथ पेट की मांसपेशियों को भीतर सिकोड़ें तथा तनुपट को ऊपर की ओर खींचे। पूरे फेफड़े खाली होने तक झोंको को चालू रखें। श्वास को लेने और छोड़ने के बीच में रोकें नहीं। दस बार इसी क्रिया को दोहराएं। यह एक आवृत्ति हुई। यदि आवश्यकता हो तो और आवृत्तियों को दोहराएं।

शिरानाल (साइनस) एवं नासिका-पथों की सफाई के लिए यह क्रिया श्वसन की सर्वाधिक सक्षम क्रिया है (इस क्रिया के समय हाथ में रूमाल रखना उचित होगा)।

इस अभ्यास की प्रभावकता के दो आधार हैं—

१. श्वास को बाहर धकेलने के लिए आवश्यक पेट की संकुचन-क्रिया का सामर्थ्य।

२. उच्छ्वसन की गति की तीव्रता यानी एक आवृत्ति में अधिक से अधिक बार उच्छ्वसन करने की क्षमता।

इन दोनों में पहला आधार अधिक महत्त्वपूर्ण है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

२

ॐ और अर्हं-ध्वनि

अनेक अच्छी एवं कल्याणकारी क्रियाएं इसलिए आकर्षक या लोकप्रिय नहीं बनतीं कि उनको समझने या परखने का प्रयत्न तक नहीं किया जाता। सामान्यत: अनेक लोग उसे अंधविश्वास कह कर मुंह फेर लेते हैं। ऐसी क्रियाओं का कम से कम तटस्थ अनुभव के द्वारा वस्तु-निष्ठ परीक्षण तो होना ही चाहिए और कभी-कभी वैज्ञानिक अध्ययन भी अपेक्षित होता है। उसके पश्चात् ही उसे तथ्यहीन या व्यर्थ माना जाना चाहिए। इसी कोटि की एक अभ्यास विधि है—ॐ और अर्हं की ध्वनि। यह एक विलक्षण ध्वनि है जिसके विधिवत् पुन: - पुन: उच्चारण के प्रयोग न केवल शारीरिक स्तर पर अपितु मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर भी अनेक लाभदायक परिणाम अनुभव किए जा सकते हैं।

ध्वनि-तरंगों के शरीर-शास्त्रीय प्रभाव

जब इनका उच्चारण किया जाता है तब ध्वनि तरंगें समूचे पसली-पिंजर में गूंजती हुई फुप्फुस के वायु-प्रकोष्ठ पर पहुंचती हैं। इन प्रकंपनों से फुप्फुसीय कोशिकाएं सक्रिय एवं सप्राण होकर ऑक्सीजन- कार्बन- डाइ-ऑक्साइड के विनिमय को पूरी क्षमता के साथ संपादित करती हैं। इस ध्वनि का अंतिम गुंजन मस्तिष्क में होता हुआ कपालीय तंत्रिकाओं को झंकृत करता है तथा उनका कायाकल्प करता है।

एक इटालियन वैज्ञानिक डॉ. लेसर लसारियो ने "ध्वनि-जनित तरंगों के मानव शरीर पर होने वाले प्रभावों" का २५ वर्ष तक वैज्ञानिक अध्ययन करने के बाद यह प्रमाणित किया है कि—

१. उच्छ्वसन के साथ शब्द-स्वरों के उच्चारण द्वारा उत्पन्न प्रकंपनों से भीतरी अवयवों की मालिश (massage) हो जाती है।

२. भीतर के ऊतकों और तंत्रिका-कोशिकाओं की गहराई तक प्रकंपन पहुंचते हैं।

३. अवयवों और ऊतकों में रक्त-संचार निर्बाध बनता है और उन्हें प्रचुर मात्रा में रक्त की आपूर्ति होने से प्राण-शक्ति दीप्त होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ध्वनि-प्रकंपनों के मानसिक प्रभाव

ध्वनि-तरंगों के मानसिक प्रभाव शारीरिक प्रभावों की तुलना में और अधिक महत्त्व रखते हैं। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि संगीत-लहरियों का मनुष्य एवं अन्य प्राणियों के भावों पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। उपयुक्त संगीत के माध्यम से इच्छित परिवर्तन भाव-धाराओं में लाया जा सकता है। अब प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर लिया गया है कि ध्वनि द्वारा किए जाने वाले आंतरिक प्रकंपन-मर्दन के प्रभाव से न केवल मांसपेशियों का शिथिलीकरण किया जा सकता है अपितु ग्लानि, विषाद और हीन-भावना जैसी मनोदशाओं को भी दूर किया जा सकता है।

जब हम मौन होते हैं, तब भी बहुत बार हम मानसिक वाक्य-रचना द्वारा अपने स्वर-यंत्र को बहुत व्यस्त रखते हैं तथा इस प्रकार अपनी स्नायविक ऊर्जा का अधिक मात्रा में अपव्यय करते रहते हैं। ॐ और अर्हं-ध्वनि के उच्चारण के समय हमारी मानसिक वाक्य-रचना की क्रिया समाप्त हो जाती है और इस प्रकार उस अपेक्षा से व्यर्थ ऊर्जा-व्यय से हम अपने आप को बचा लेते हैं।

ॐ और अर्हं-ध्वनि तरंगों के द्वारा हम शामक विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करते हैं, जो लगातार उसी आवृत्ति वाले अनुवादी स्पन्दनों को शरीर में उत्पन्न करती रहती हैं। नवीनतम शरीर-शास्त्रीय अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि इन स्पन्दनों का हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिनके द्वारा हमारी भावधारा, चिन्तन एवं आचरण को प्रभावित किया जा सकता है।

ध्वनि-प्रकंपनों के प्रभाव से हमारी अनैच्छिक तंत्रिका-संस्थान की दो धाराओं—अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्रिकाओं के बीच अधिक अच्छा संतुलन स्थापित होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

३
जीवन का रासायनिक स्वरूप

क्या आप जानते हैं कि आपके शरीर में इसी क्षण हजारों रासायनिक अभिक्रियाएं चल रही हैं? आपके शरीर के विभिन्न संघटक प्रतिक्षण परस्पर संयुक्त हो रहे हैं या पृथक् हो रहे हैं या जटिल परिवर्तनों एवं पुनर्गठनों के दौर से गुजर रहे हैं? जीवित शरीर में होने वाली इन सारी रासायनिक अभिक्रियाओं की सर्वांगीण निष्पति को चयापचय (मेटाबोलिज्म) की संज्ञा दी जाती है। इनमें से जिन अभिक्रियाओं की निष्पत्ति शारीरिक संरचना में प्रयुक्त घटकों का निर्माण करने वाली होती हैं, वे उपचयात्मक (एनाबोलिक) अभिक्रियाएं कहलाती हैं, तो दूसरी ओर जिन अभिक्रियाओं में उक्त निर्माण में अपेक्षित पदार्थों के उत्पादन के लिए पोषक आहार का विघटन किया जाता है उन्हें अपचयात्मक (केटाबोलिक) अभिक्रियाएं कहते हैं। इन दोनों प्रकार—उपचय और अपचय—की क्रियाओं का जो एक विस्मयकारी अभिनय चलता रहता है, वही 'जीवन' है।

शरीर के रासायनिक संघटक

हमारे जीवित शरीर का मूल द्रव्य जिसे "जीव द्रव्य" (प्रोटोप्लाज़म) कहा जाता है कार्बनिक और अकार्बनिक संयोगों का एक जटिल मिश्रण है। जिन मूल तत्त्वों से इसकी रचना होती है, उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो कि केवल जीवित शरीर में ही पाया जाय, किन्तु इन मूल तत्त्वों के पारस्परिक संयोगों की भिन्नता से जीवित एवं निर्जीव जगत का भेद किया जाता है। अधिक महत्त्वपूर्ण भेद यह है कि सजीव शरीर में मूल तत्त्वों का जिन जटिल संयोगों के रूप में चयन होता है, उनमें से अनेक पदार्थों का प्रतिरूप निर्जीव जगत् में सर्वथा अनुपलब्ध है। जीव द्रव्य के मुख्य संघटक हैं—जल, अकार्बनिक लवण, प्रोटीन, कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट), वसा एवं न्यूक्लिक एसीड (केन्द्रक अम्ल)।

जल

जल हमारे शरीर में सर्वाधिक विपुल मात्रा में उपलब्ध यौगिक (रासायनिक) पदार्थ है। हमारे समूचे शरीर के वजन का लगभग ६५% से भी अधिक हिस्सा जल है। यद्यपि जल एक सरलतम यौगिक पदार्थ है फिर भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पदार्थों में से एक है। मनुष्य जल पिए बिना सम्भवतः कुछ दिनों से अधिक जी नहीं सकता।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जल हमारे शरीर में अनेक प्रकार के क्रिया-कलापों में भाग लेता है। जैसे कोशिकाओं की रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए यह एक उपयुक्त तरल माध्यम के रूप में काम आता है।

यह यातायात का एक मुख्य माध्यम बनता है, जिनके द्वारा शरीर में ऑक्सीजन, पोषक पदार्थ एवं अन्य उपयोगी पदार्थों का वितरण किया जाता है।

गुर्दे आदि विसर्जन-तंत्र के अवयवों द्वारा विसर्जित किए जाने वाले अवशिष्ट पदार्थों को उन अवयवों तक पहुंचाने में तथा वहां से बाहर विसर्जित करने के लिए जल एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

जल हमारे शरीर के तापमान-नियन्त्रण प्रणाली के कार्य में मूलभूत भूमिका अदा करता है।

ऊतकों में जलीय अंश के अनुपात का नियन्त्रण निरंतर मस्तिष्क द्वारा होता रहता है।

अकार्बनिक लवण

शरीर के वजन का ४.५% हिस्सा अकार्बनिक लवण का है। वे अंशत: घुले हुए विघटित आयन[१] के रूप में होते हैं। अंशत: कार्बनिक यौगिको के साथ संयुक्त रूप में होते हैं।

कोशिकाओं के बाहर के शारीरिक तरल द्रव्यों में पाए जाने वाले आयनों में सोडियम और क्लोराइड आयन सर्वाधिक विपुल मात्रा में होते हैं, जबकि कोशिकाओं के भीतर के तरल द्रव्यों में पोटेशियम और फासफोरस आयन मुख्य अकार्बनिक घटकों के रूप में होते हैं। अस्थियों का प्रमुख घटक केल्शियम फास्फेट होता है। विविध प्रकार के अन्य आयन भी अल्पमात्रा में विद्यमान होते हैं, जिनमें से कुछ आयनों की मात्रा का तो मुश्किल से पता लग सकता है। किन्तु इनमें से कुछ विरल तत्त्व अति महत्त्वपूर्ण किण्वक (इन्ज़ाइम) प्रणालियों के संघटक के रूप में होते हैं जिनके बिना शरीर की सामान्य अभिक्रियाएं हो ही नहीं सकतीं। निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण शारीरिक क्रिया-कलापों में अकार्बनिक लवणों की अनिवार्यता होती है:

१. अम्ल-प्रत्यम्ल-सन्तुलन
२. रक्त जमाव (blood coagulation)
३. ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड का परिवहन

---

१. अणु जिसकी विद्युतीय तटस्थता समाप्त हो जाती है और जो विद्युत्-आवेश युक्त हो जाता है, उसे 'आयन' कहते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४. तन्त्रिका की विद्युत चालकता

५. मांसपेशीय संकुचन

६. चयापचयिक क्रियाओं का समन्वय एवं नियमन।

कार्बोज (कार्बोहाइड्रेट)

कार्बोज तीन मौलिक तत्त्वों से बनते हैं—कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन। इनका अनुपात—$C_x H_{2y} O_y$ के रूप में होता है।

हाइड्रोजन और ऑक्सीजन परमाणुओं का अनुपात पानी (H_2O) के सदृश होता है। शर्करा एवं श्वेतसार (स्टार्च) का समावेश इनमें होता है तथा ये ऊर्जा उत्पादन के मुख्य स्रोत हैं। द्राक्षा-शर्करा (ग्लुकोज़) शर्करा का एक सरल रूप है जिसे रक्त-प्रवाह के माध्यम से सारे शरीर में पहुंचाया जाता है। शरीर की सभी कोशिकाओं के लिए और विशेष रूप से मस्तिष्क-कोशिकाओं के लिए यह एक अनिवार्य पोषक तत्व है। श्वेतसार भी अनेक प्रकार की शर्कराओं का ही संयुक्त स्वरूप है। शरीर में जिस शर्करा की तुरंत जरूरत न हो, उसे ग्लाईकोजन के रूप में संश्लेषित कर दिया जाता है एवं यकृत व मांसपेशीय ऊतकों में संगृहीत किया जाता है।

वसा

मनुष्य के शरीर में वसा (चर्बी) व वसायुक्त पदार्थ कुछ मूल्यवान् भूमिकाएं अदा करते हैं। संगृहीत वसा आरक्षित ऊर्जा-स्रोत के रूप में उपयोगी होती है। कार्बोहाइड्रेटों की तुलना में वसा दुगुनी केलोरी (ऊर्जा) उत्पादन कर सकती है। इसलिए वह ऊर्जा-संग्रह के अधिक लाभकारी (या मितव्ययी) साधन के रूप में सिद्ध होती है। सामान्य रूप से कोशिकाओं की पारगम्यता को बनाए रखने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार यह कोशिकाओं के भीतर पदार्थों के प्रवेश और उनसे बाहर निर्गमन का नियमन करती है। वसा में घुलनशील विटामिनों के परिवहन में भी इसका सहयोग मिलता है।

प्रोटीन

मनुष्य के शरीर में प्रोटीनों के लगभग १००००० प्रकार होते हैं। मनुष्य में पाए जाने वाले प्रोटीन अन्य प्राणियों के प्रोटीनों से भिन्न होते हैं तथा एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में भी प्रोटीनों में असमानता मिलती है। प्रोटीनों की रचना एमिनो एसिड नामक छोटी-छोटी इकाइयों के परस्पर संयोग से होती

---

१. एक ग्राम जितने पदार्थ में रहने वाले अणुओं की संख्या ६.९२×१०^{२३} होती है। इसे मोल कहते हैं। जीवन के जटिलतम अणुओं में परमाणुओं की संख्या करोड़ों में होने पर भी उनका वजन एक ग्राम का छोटा-सा भाग ही होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

है। कुछ प्रोटीनों के अणुओं (molecule) का वजन अपेक्षाकृत अधिक होता है, उनका आणविक वजन लाखों "मोल"[१] जितना होता है। शरीर में प्राकृतिक रूप में लगभग बीस प्रकार के एमिनो एसिड होते हैं।

प्रचुरता की दृष्टि से कोशिकाओं में जल के बाद दूसरा स्थान प्रोटीनों का है। सम्पूर्ण कोशिका के द्रव्यमान का लगभग १० से २० प्रतिशत हिस्सा प्रोटीन है। विभिन्न प्रकार के प्रोटीनों को सामान्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है—

१. संरचनात्मक

२. क्रियात्मक

संरचनात्मक प्रोटीनः ये प्रोटीन कोशिकाओं की झिल्ली में होते हैं तथा कोशिका के ढांचे को बनाए रखते हैं। अधिकांश प्रोटीन लम्बे रेशेदार तंतुओं के रूप में होते हैं। वे कोशिकाओं के ढांचों को तनन-बल प्रदान करते हैं जिससे कोशिकाएं तनावों के बावजूद भी बनी रहती हैं।

क्रियात्मक प्रोटीनः इनमें किण्वकों (एन्ज़ाइम) एवं हार्मोनों का समावेश होता है। ये शरीर की क्रियाओं का नियमन करते हैं।

किण्वक हमारे शरीर के भीतर विद्यमान अकार्बनिक उत्प्रेरक (केटेलिष्ट) हैं जिनके अभाव में शरीर की अधिकांश रासायनिक अभिक्रियाएं घटित नहीं हो सकतीं। सामान्य रूप से वे विटामिन या धातु-आयन जैसे अन्य पदार्थों के साथ अस्तित्व रखते हैं।

हार्मोन शरीर की कोशिकाओं, ऊतकों एवं अवयवों की क्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं एवं उनके बीच ताल-मेल बिठाते हैं।

केन्द्रक प्रोटीन (न्यूक्लीओ-प्रोटीन)[१] प्रोटीनों एवं केन्द्रक अम्लों (न्यूकलीक एसिड्स) के समूह-रूप होते हैं। वे सारे शरीर की संरचना और क्रियाओं के समस्त आनुवंशिक संकेतों के वाहक होते हैं।

नए ऊतकों की वृद्धि एवं पुराने ऊतकों की मरम्मत या सुधार के लिए प्रोटीनों की निरन्तर आपूर्ति आवश्यक होती है। किंतु आहार के प्रोटीनों का उपयोग उनके विद्यमान रूप में नहीं हो पाता। पाचनक्रिया के दौरान उनको पहले उनके संघटकों—एमिनो एसिड्स के रूप में विभाजित किया जाता है और बाद में शरीर के अनुरूप प्रोटीनों के रूप में उनका निर्माण किया जाता है।

---

१. ये सामान्यतः कोशिका के केन्द्र में रहते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

केन्द्रक अम्ल

केन्द्रक अम्ल कोशिकाओं के केन्द्र में सबसे पहले पाए गए थे; अतः इनका नामकरण "केन्द्रक अम्ल" के रूप में हुआ, पर वस्तुतः तो वे कोशिकाओं में केन्द्र के बाहर कोशिका-द्रव्य (साइटोप्लाज्म) में भी पाए जाते हैं। प्रत्येक कोशिका में २३ युग्मों में गुणसूत्र (क्रोमोसोम) विद्यमान होते हैं, जिनमें केन्द्रक अम्ल के अणुओं के रूप में आनुवंशिक संकेत भरे हुए होते हैं। इनमें संगृहीत सूचनाओं का आनुमानिक परिमाण पांच सौ-पांच सौ पृष्ठों वाली हजार पुस्तकों जितना होता है! आनुवंशिक रासायनिकी के क्षेत्र में शोधकार्य के लिए एक दर्जन से अधिक वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार मिल चुका है।

प्रत्येक कोशिका में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के केन्द्रक अम्ल होते हैं। डी-आक्सी-रिबोन्यूक्लिक एसिड (डी. एन. ए.) नामक केन्द्रक अम्लों के अणुओं में सर्वांगीण मूल योजनाएं (मास्टर प्लान) निहित होती हैं। रिबो-न्यूक्लिक-एसिड (आर. एन. ए.) नामक केन्द्रक अम्लों के अणुओं द्वारा इन योजनाओं की क्रियान्विति के सूत्र निर्दिष्ट किए जाते हैं। अन्ततोगत्वा अनेक अन्य प्रोटीनों की संरचना की जाती है। डी. एन. ए. और आर. एन. ए. के अणुओं की संरचना में रिबोज-शर्करा[१], फास्फेट एवं नाइट्रोजन मूलक रासायनिक पदार्थ काम में आते हैं। डी. एन. ए. और आर. एन. ए. में संरचना की दृष्टि से कुछ सादृश्य भी है और वैसा दृश्य भी।

प्रोटीन की तरह आहार में पाए जाने वाले केन्द्रक अम्ल भी विद्यमान रूप में काम नहीं आते, पर पाचन के दौरान पहले उनके मूल संघटकों के रूप में उनका विभाजन किया जाता है और फिर पुनः-संश्लेषण के द्वारा आवश्यकतानुसार उनकी रचना की जाती है।

आहार-विज्ञान (न्यूट्रीशन) के महत्त्व को समझने एवं उसका मूल्यांकन करने के लिए जीवन के रासायनिक स्वरूप का प्राथमिक बोध आवश्यक है।

---

१. रिबोज एक प्रकार की शर्करा रूप रासायनिक द्रव्य है, जिसमें कार्बन के ५ अणु होते हैं, रक्त में पाई जाने वाली शर्करा—द्राक्षाशर्करा में कार्बन के छः अणु होते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

४

आहार-विज्ञान

शारीरिक क्रियाओं के संचालन के लिए जिस ऊर्जा की तथा शारीरिक वृद्धि एवं प्रतिपूर्ति के लिए जिस निर्माण-सामग्री की आवश्यकता होती है, उसकी उपलब्धि के लिए हम प्रतिदिन भोजन एवं पानी ग्रहण करते हैं। मनुष्य जीने के लिए चाहे विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों को ग्रहण करता हो, परंतु सम्यग् वृद्धि, विकास एवं स्वास्थ्य के लिए पोषक तत्वों का संतुलन नितांत आवश्यक है। संतुलित भोजन में प्रोटीन, कार्बोज और वसा इन तीन तत्वों के अतिरिक्त विटामिन, खनिज एवं लवणों तथा पर्याप्त मात्रा में जल का भी समावेश किया गया है। इनके साथ-साथ आंत्रिक क्रमाकुंचन[१] (पेरिस्टालसिस) को बनाए रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में कुछ अपाच्य रेशेदार द्रव्य की भी आवश्यकता मानी गई है। अब हम संतुलित भोजन के लिए आवश्यक तत्वों में से प्रत्येक की चर्चा करेंगे।

जल

जैसे हम पिछले प्रकरण में देख चुके हैं—हमारे शरीर का लगभग दो-तिहाई हिस्सा जल रूप है। जल आवश्यकतानुसार शरीर में उष्णता और शीतलता उत्पन्न करने वाली प्रणाली में मुख्य भूमिका अदा करता है। इसके साथ-साथ जल रासायनिक अभिक्रियाओं की क्रियान्विति में एक विलायक[२] द्रव्य के रूप में उपयोगी होता है तथा शरीर के परिसंचरण तंत्रों में परिवाहक तरल द्रव्य के रूप में अपनी सेवा देता है। शरीर में से मल, मूत्र, प्रस्वेद, उच्छ्वसन आदि के माध्यम से लगातार जल का व्यय होता रहता है, जिसकी

---

१. पाचन-क्रिया के दौरान खाद्य-पदार्थों को समूचे भोजन-प्रणाली में आगे-से आगे धकेलने के लिए पाचन– अवयवों की मांसपेशियों के क्रमिक आकुंचन-विकुंचन से उत्पन्न होने वाली मन्द स्वतः संचालित लहरी गति को 'क्रमाकुंचन' की संज्ञा दी गई है।

२. ठोस रासायनिक द्रव्यों की अपनी अभिक्रियाओं की क्रियान्विति के लिए तरल द्रव्य की आवश्यकता होती है, जिसमें वे घुल जाते हैं। इस प्रकार के तरल द्रव्य को विलायक द्रव्य कहते है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

आपूर्ति प्रतिदिन के भोजन के माध्यम से की जाती है। पानी, अन्य पेय पदार्थ, फल, शाक-सब्जी आदि जल की आपूर्ति के सामान्य साधन हैं।

कार्बोज

सामान्य रूप से मनुष्य के भोजन में कार्बोज यानी शर्करा एवं श्वेतसार का प्रमाण सबसे अधिक होता है। यह संतुलित भोजन का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, क्योंकि शरीर के लिए ऊर्जा का यह अधिमान्य स्रोत है। रक्त में उपलब्ध होने वाले प्रोटीनों और वसाओं की अपेक्षा द्राक्षा-शर्करा का अपचय पहले किया जाता है।

यदि भोजन में कार्बोज की पर्याप्त मात्रा का अभाव हो जाए, तो ऊर्जा-उत्पादन के लिए प्रोटीनों का अपचय करना पड़ेगा और ऐसी स्थिति में शरीर के प्रोटीनों का अपव्यय होगा। शर्करा के रूप में कार्बोज की मात्रा की अधिकता आटे से बनने वाले भोजन जैसे रोटी, बिस्कुट आदि, धान्य या अनाज से बनने वाले दलिया, खिचड़ी आदि तथा शाक जैसे आलू आदि में होती है। मीठे खाद्य-पदार्थों में शर्करा के रूप में कार्बोज उपलब्ध होता है।

द्राक्षा-शर्करा और उसी के विभिन्न रूप सरल शर्कराएं (मोनोसैकेराइड) हैं। ईशु-शर्करा, यव-शर्करा एवं दुग्ध-शर्करा डाईसैकैराइड अर्थात् दो सरल शर्कराओं का संयुक्त रूप है। श्वेतसार की संरचना अधिक जटिल होती है, जिसमें अनेक सरल शर्कराएं (मोनोसैकेंराइड) जुड़ी हुई होती हैं। सेल्यूलोज वनस्पति-जगत् की एक पोलीसैकेराइड शर्करा है। यद्यपि हमारे भोजन का यह एक प्रमुख संघटक है, फिर भी हमारे शरीर के लिए वह पोषक तत्त्व नहीं बन सकता, क्योंकि हमारे शरीर में इसे पचाने के उपयुक्त किण्वक का अभाव होता है। फलों, शाक-सब्जियों, चोकर यानी धान्य के पूरे दानों के ऊपर की भूसी आदि में यह उपलब्ध होता है। अपाच्य होने के कारण सेल्यूलोज के रेशे पाचन-प्रणाली में से गुजरने के बाद वैसे के वैसे निकल जाते हैं, फिर क्षुधा-तृप्ति की दृष्टि से यह उपयोगी है तथा मल-विसर्जन की क्रिया में काफी सहायक होता है। भोजन में रेशेदार द्रव्यों की प्रचुर मात्रा चिरकालिक कब्जी की समस्या को समाहित करने में सहायक बनती है। जहां भोजन में कार्बोज का अधिक प्रमाण "मोटापा" का एक मुख्य निमित बनता है, वहां रेशेदार द्रव्यों की प्रचुरता वाला भोजन मोटापा बढ़ाए बिना क्षुधा को शांत कर सकता है।

ऐसे प्रमाणों में अभिवृद्धि हो रही है जो यह बताते हैं कि इस प्रकार का भोजन कैंसर एवं हृदय-रोग दोनों के दर को कम करने में सहायक हो सकता है। ऐसा भोजन संभावित कैंसरोत्पादक (कार्सिनोजेन) तत्त्वों को शरीर से बाहर निकालने की गति को तीव्र बनाता है तथा भूसी और अन्य रेशेदार द्रव्य अतिरिक्त कोलेस्टेरोल की मात्रा को विसर्जित करने में प्रेरक बनता है। इसलिए चोकर सहित आटे की रोटी और बिना पालिश किए हुए चावल स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक मूल्यवान् माने गए हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रोटीन

विविध प्रकार के प्रोटीन हमारे भोजन में इसलिए आवश्यक होते हैं वि उनसे हमें एमिनो अम्ल नामक द्रव्य प्राप्त होता है जो कि शारीरिक विकास का एक अनिवार्य तत्त्व है। प्रकृति में लगभग २३ प्रकार के विभिन्न एमिनो अम्ल पाए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के खाद्य-पदार्थों में पाए जाने वाले प्रोटीनों में एमिनो अम्ल के प्रकार और मात्रा भिन्न-भिन्न होती हैं, परन्तु किसी एक ही प्रोटीन में सभी प्रकार के एमिनो अम्ल नहीं पाए जाते। वस्तुस्थिति तो यह है कि मानव-शरीर कुछ—एक प्रकार के एमिनो अम्लों को दूसरे प्रकारों में बदलने की क्षमता रखता है। इतना ही नहीं, प्रोटीनेतर पदार्थों (जैसे, कार्बोज और वसा) से उनका नए सिरे से निर्माण भी कर सकता है। किन्तु इसके बावजूद भी आठ प्रकार के अनिवार्य एमिनो अम्लों का संश्लेषण करने में वह असमर्थ है; इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए इनकी आपूर्ति केवल भोजन के द्वारा ही की जाती है। इनके अतिरिक्त शेष एमिनो अम्लों की यद्यपि शरीर में आवश्यकता होती है फिर भी भोजन में उनकी अनिवार्यता नहीं है क्योंकि उनका निर्माण शरीर के भीतर भी किया जा सकता है।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि दूध से उपलब्ध होने वाले प्रोटीनों मे शरीर की वृद्धि एवं संपोषण के लिए आवश्यक सभी एमिनो अम्ल प्राप्त होते हैं। कुछ एक वनस्पतियों—विशेषकर फलीदार शिम्ब (मटर, सेम आदि), मसूर (मूंग आदि), मूंगफली आदि—से उच्च प्रकार के प्रोटीनों की उपलब्धि प्रचुर मात्रा में मानी गई है। यह मान्यता ठीक नहीं है कि केवल आमिषाहार के द्वारा ही आवश्यक प्रोटीन प्राप्त हो सकता है। ऐसा माना गया है कि उस निरामिष भोजन के माध्यम से व्यक्ति स्वस्थ जीवन जी सकता है, जिसमें फलीदार शिम्बों एवं एक-दूसरे की कमी पूर्ति करने वाले अन्य पदार्थों का सम्यक् संयोजन किया गया हो। चूंकि पाचन के दौरान प्रत्येक प्रोटीन-अणु का विभाजन उनके घटक एमिनो-अम्लों में हो जाता है, इसलिए इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि प्रोटिनों का स्रोत क्या है।

यदि पर्याप्त मात्रा में आवश्यक प्रकार के एमिनो अम्लों को भोजन के द्वारा नियमित उपलब्ध नहीं कराया जाता, तो आवश्यक केलोरी[१] (Calorie) की पूर्ति होने पर भी "प्रोटीन की कमी से होने वाली रुग्णता" के लक्षण प्रगट हो सकते हैं। बच्चों में प्रोटीन की कमी के कारण वृद्धि में रुकावट, सुस्ती एवं मानसिक मन्दता आदि बीमारियां उत्पन्न होती हैं।

---

१. केलोरी "सी" को केपिटल अक्षर में लिखकर उसे भौतिकी में प्रयुक्त केलोरी से भिन्न किया गया है। शरीर-विज्ञान में एक किलो पानी का तापमान एक डिग्री सेण्टीग्रेड बढ़ाने के लिए अपेक्षित ऊर्जा को एक केलोरी (Calorie) कहा जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गेहूं, मक्का, मटर आदि के प्रोटीन सरल प्रोटीन हैं जिनमें केवल एमिनो अम्ल होते हैं, जबकि दूध आदि के प्रोटीन विषम प्रोटीन होते हैं अर्थात् वे अन्य प्रोटीनेतर पदार्थों के साथ जुड़े होते हैं।

वसा (घी, तेल आदि)

कार्बोज और प्रोटीन की अपेक्षा वसाएं शरीर के लिए ऊर्जा के अधिक मितव्ययी स्रोत हैं। (१ ग्राम वसा से जहां ९ केलोरी ऊर्जा मिलती है, वहां १ ग्राम कार्बोज या प्रोटीन से केवल ४ केलोरी ऊर्जा मिलती है।) इसके अतिरिक्त जहां अधिकांश खाद्य-पदार्थों में समूचे पदार्थ के वजन का केवल २५% हिस्सा ही कार्बोज या प्रोटीन के रूप में होता है, शेष ७५% जल के रूप में ही होता है, वहां वसा वाले पदार्थ शत-प्रति-शत वसा ही हैं।

हृदय-रोग की वृद्धि में वसाओं का सेवन जिम्मेदार होने की संभावना के विषय में कुछ समय से काफी विवाद चल रहा है। इसी प्रकार धमनी की भित्तियों के भीतर वसायुक्त पदार्थों के जमा होने से होनेवाली "एथरोस्क्लेरोसिस" नामक बीमारी का मुख्य खलनायक "कोलेस्टेरोल" नामक पदार्थ (जो वसाओं से उपलब्ध होता है) माना जाता था और हृदय रोग के मरीजों को अपने भोजन में से कोलेस्टेरोल युक्त पदार्थों की मात्रा को अत्यन्त कम करने का परामर्श दिया जाता था। पर हाल में ऐसा ज्ञात हुआ है कि भोजन में विद्यमान कोलेस्टेरोल की मात्रा का धमनियों की भित्तियों की स्थिति के साथ सदा कोई निश्चित सम्बन्ध हो ही, ऐसा नहीं है, क्योंकि भोजन में कोलेस्टेरोल का अभाव होने पर भी शरीर अपने भीतर उसका प्रचुर मात्रा में निर्माण कर लेता है। वास्तव में तो कोलेस्टेरोल शरीर के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण द्रव्य है, जो शरीर की सब कोशिकाओं, तरल द्रव्य एवं रक्त में पाया जाता है।

आधुनिक अनुसंधान से यह फलित होता प्रतीत होता है कि संतुलित भोजन में "असंतृप्त वसा" की कुछ मात्रा आवश्यक है। वनस्पति और बीजों के तेल में प्राकृतिक अवस्था में यह मौजूद होता है। जब इन तेलों का हाइड्रोजनीकरण[1] किए जाने पर उन्हें दीर्घकाल तक संगृहीत किया जा सकता है, पर उससे उनका असंतृप्तता का गुण नष्ट हो जाता है। भोजन में संतृप्त वसा और/अथवा कोलेस्टेरोल की मात्रा की अधिकता के कारण मोटापा तथा धमनी-भित्तियों के भीतर वसा-युक्त पदार्थों के जमा होने से होनेवाली रुग्णता की संभावना बढ़ती है। असंतृप्त वसा-युक्त भोजन कोलेस्टेरोल को जमा होने से रोकता है एवं शारीरिक व्यायाम आदि से धमनी-भित्तियों में एकत्रित कोलेस्टेरोल की सफाई होती है।

---

१. वनस्पति तैलों के हाइड्रोजनीकरण की प्रक्रिया से "घी" बनाया जाता है, जिसे "वनस्पति घी" के रूप में जाना जाता है। इस प्रक्रिया से उसे लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है और घी जैसा लगने पर भी असली घी के गुण उसमें नहीं आ पाते।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विटामिन

यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से संतुलित भोजन लेता है, तो उसे विटामिन की गोली खाने की आवश्यकता नहीं रहती। आधुनिक युग में खाद्य पदार्थों को लम्बे काल तक संगृहीत करने के लिए विविध प्रक्रियाओं के द्वारा संसाधित किया जाता है, पर यह बात भुला दी जाती है कि इससे खाद्य पदार्थों में रहे हुए विटामिन समाप्त हो जाते हैं। जैसे—दूध के पास्तुरीकरण[१] से उसके नैसर्गिक विटामिन-सी का नाश हो जाता है। इसी तरह अनाज की मिलों में तैयार किए जाने वाले आटे आदि के छिलके एवं चोकर को पूर्णतः निकाल देने के कारण उनमें विद्यमान महत्त्वपूर्ण पौष्टिक तत्त्व—विशेषतः विटामिन बी-काम्पलेक्स नष्ट हो जाते हैं।

विटामिन एक प्रकार के कार्बनिक द्रव्य हैं जिनकी हमारे शरीर की चयापचयिक प्रक्रियाओं में यद्यपि अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है, फिर भी वे अनिवार्य हैं तथा उनका निर्माण शरीर के भीतर नहीं किया जा सकता। अधिकांश विटामिनों की आवश्यकता शरीर में किण्वकों के निर्माण के लिए होती है। मनुष्य के सम्यक् पोषण के लिए कम से कम एक दर्जन विटामिनों की आवश्यकता बताई गई है तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए इनसे भी अधिक संख्या में और विटामिनों की आवश्यकता होने की धारणा की जा रही है। जबकि अन्य प्राणी अपनी आवश्यकता के अनुसार विटामिन सी अपने आप निर्मित कर लेते हैं, मनुष्य के लिए इसका स्रोत केवल बाहर से लिया गया भोजन ही है। वनस्पति को बाहर से कोई विटामिन ग्रहण करने की अपेक्षा नहीं होती। वह अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं अपने भीतर संश्लेषण के द्वारा कर लेती है। वास्तव में तो मनुष्य के आहार के लिए आवश्यक विटामिनों का एक प्रमुख स्रोत वनस्पति-जगत् से प्राप्त विभिन्न पदार्थ हैं।

विटामिनों के प्रकार

विटामिनों को उनकी घुलनशीलता के आधार पर मुख्यतः दो भागों में बांटा जा सकता है—

१. विटामिन—ए, डी, और के वसा एवं तेल में घुल सकते हैं। आंतों द्वारा वसा के सात्मीकरण के लिए पित्त की उपस्थिति आवश्यक होती है। यदि पित्त की कमी होती है, तो वसा का सात्मीकरण नहीं हो पाता और वसा के सात्मीकरण के अभाव में शरीर में इन विटामिनों की कमी हो जाती है। ये

---

१. पास्तुरीकरण अर्थात अधिक निर्जीवीकरण। बड़े शहरों में रासायनिक प्रक्रिया से दूध को लम्बे काल तक खराब होने से बचाने के लिए संसाधित किया जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विटामिन अपेक्षाकृत दीर्घकाल तक शरीर में संगृहीत किए जा सकते हैं, अत: इनका निरन्तर ग्रहण आवश्यक नहीं है। प्रत्युत यदि आवश्यकता से अधिक मात्रा में उन्हें ग्रहण कर लिया जाता है, तो उनका संचय स्वयं एक समस्या बन सकता है।

२. नानाविध विटामिनों का समूह जिसे विटामिन बी-काम्पलेक्स कहा जाता है और विटामिन– 'सी' जल में घुलनशील होते हैं तथा शरीर में उनका संचय नहीं होता। इनकी अतिरिक्त मात्राएं शीघ्र ही विसर्जित हो जाती हैं, अत: उनका दैनिक स्थायी स्त्रोत आवश्यक माना गया है। इसप्रकार इनकी संचित अतिमात्रा समस्या नहीं बनती।

विटामिन–ए

विटामिन–'ए' आंखों की दृष्टि की रासायनिक प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। इसकी कमी से रतोंधापन (रात्रि में दिखाई न देना) जैसी बीमारी पैदा हो जाती है। विटामिन–'ए' शारीरिक विकास की प्रक्रिया में तथा त्वचा एवं श्लेष्म-झिल्लिकाओं के संरक्षण में भी भाग लेता है। किन्तु इसकी अत्यधिक मात्रा से शरीर में विषाक्तता उत्पन्न हो सकती है, जिससे सिरदर्द, जी मिचलाना आदि परिणाम आ सकते हैं। गाजर में प्रचुर मात्रा में विटामिन–'ए' का पूर्णरूप विद्यमान होता है, जिससे शरीर के भीतर विटामिन–'ए' बनाया जाता है।

विटामिन बी-काम्पलेक्स

यह बड़ी अजीब बात लग सकती है कि विटामिन 'बी-काम्पलेक्स' समूह के सभी सदस्यों में न तो रासायनिक सादृश्य है और न ही उनका प्रभाव समान है। इनका एक ही समूह में वर्गीकरण केवल एक ऐतिहासिक संयोग ही है। ये सारे विटामिन जल में घुलनशील हैं तथा अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों में एक साथ पाए जाते हैं। इस समूह के कुछ सदस्य इस प्रकार हैं—

विटामिन बी-१ (थियामाइन)

इस समूह के विटामिनों में सर्व प्रथम इस विटामिन का आविष्कार हुआ, अत: इसे बी-१ नाम दिया गया। शरीर में इसकी कमी से प्रारम्भ में भूख कम हो जाती है और अपच या अजीर्ण होता है। आगे चलकर तन्त्रिका-तंत्र पर इसका कुप्रभाव पड़ता है, क्रियावाही तंत्रिकाओं की कार्य-क्षमता कम होती जाती है और अन्ततोगत्वा "बेरीबेरी" नामक बीमारी और हृदय-शोथ हो जाता है। इस विटामिन का अभाव मुख्य रूप से तंत्रिका-तंत्र एवं हृदय की मांसपेशियों को प्रभावित करता है। खमीर (yeast), दूध, पूरे दाने वाले धान्य (चोकर और छिलके सहित), फलीदार शिम्ब (सेम आदि), गिरीदार फल (nuts) आदि खाद्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पदार्थों में इस विटामिन की प्रचुर मात्रा होती है। इस विटामिन की दैनिक आवश्यकता शरीर के परिमाण एवं दैनिक केलोरी की खपत पर आधारित मानी गई है।

विटामिन बी-२ रिबोफ्लेविन

इस विटामिन को सर्वप्रथम दूध से पृथक् किया गया। यद्यपि इस विटामिन की आवश्यक मात्रा का अधिकांश भाग आंतों में स्थित कीटाणुओं द्वारा ही निर्मित किया जाता है, फिर भी कुछ अंश तो भोजन के माध्यम से ही ग्रहण होता है। इसकी कमी का प्रभाव सामान्यत: मन्द रूप में होता है। चर्म रोग, त्वचा-शोथ, जिह्वा-शोथ, मुंह के कोने का फटना आदि बीमारियां इसकी कमी से होती हैं। अन्य विटामिन 'बी' की कमी के साथ ही प्राय: इसकी कमी होती है। इस विटामिन के स्रोत—मूंगफली, अंकुरित गेहूं और पालक आदि वनस्पति आदि माने जाते हैं।

विटामिन बी-६

इसकी कमी से रक्ताल्पता, त्वचा-शोथ और ऐंठन जैसी बीमारियां होती हैं। सौभाग्य से इसकी कमी विरल ही देखी जाती है। अन्य विटामिन बी के स्रोत से यह विटामिन भी प्राय: प्राप्त होता है, जैसे—अंकुरित गेहूं, दूध आदि। आंतों में रहे हुए कीटाणुओं द्वारा भी यह संश्लिष्ट किया जाता है।

विटामिन बी-१२

यह विटामिन शरीर की वृद्धि एवं लाल रक्त-कणों के परिपाक के लिए आवश्यक है। इसकी बहुत थोड़ी मात्रा केवल कुछ माइक्रोग्राम (ग्राम का १० लाखवां हिस्सा) ही पर्याप्त है। इसकी कमी के कारण शरीर में रक्ताल्पता, दुर्बलता और हाथ-पैरों की शून्यता और अन्त में उनके नियन्त्रण की क्षमता का सर्वथा अभाव जैसी बीमारियां होती हैं।

नियासिन

नियासिन विटामिन खमीर, मूंगफली, अंकुरित गेहूं, फलीदार शिम्ब, दूध आदि में होता है। बड़ी आंतों में स्थित कीटाणुओं द्वारा भी इसका संश्लेषण होता है। इसकी कमी से पागलपन, अतिसार आदि बीमारियां हो सकती हैं।

पेण्टौथेमिक एसिड, फोलिक एसिड तथा बायोटिन

ये विटामिन बी-समूह के अन्य सदस्य हैं, जो आंतों के कीटाणुओं द्वारा निर्मित होते हैं। खमीर, दूध, अन्न, वनस्पति एवं गिरीदार फल इन विटामिनों के खाद्य-स्रोत माने गए हैं। हरी पत्ती व ताजी सब्जियों में भी फोलिक एसिड होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विटामिन–सी

मनुष्य उन थोड़े प्राणियों में से हैं, जिन्हें विटामिन-सी खाद्य-पदार्थों से ही उपलब्ध होते हैं। सर्दी-जुकाम की रोकथाम के लिए इस विटामिन का बड़ी मात्रा में (१ से १० ग्राम तक प्रतिदिन) उपयोग किया जाता है। इससे जुकाम की तीव्रता भी कम होती है। इसके अतिरिक्त धमनी के काठिन्य को पैदा करने वाले कोलेस्टेरोल की धमनी की भित्तियों से सफाई करने का काम भी यह विटामिन करता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि इससे कैंसर-प्रतिरोधी क्रिया होती है और सचमुच अन्तिम स्थिति वाले कैंसर-रोगियों को इस विटामिन का बड़ी मात्रा में सेवन कराने पर उनकी आयु में उल्लेखनीय वृद्धि हुई हैं।

स्कर्वी[१] नामक बीमारी से पीड़ित रोगियों पर नाना प्रकार की भोजन-सामग्री के प्रयोग किए गए। उन्हें जब (विटामिन 'सी' युक्त) ताजे फल दिए गए, तब उस रोग के लक्षण दूर हो गए। विटामिन–'सी' का मूल नाम "एस्कोर्बिक एसिड" है। विटामिन–'सी' की कमी होने पर घावों के भरने में बाधा उत्पन्न होती है तथा वजन कम होता है एवं कमजोरी व स्कर्वी रोग के अन्य लक्षण प्रकट होते हैं।

विटामिन–'सी' के उत्तम स्रोत माने जाते हैं—ताजे फल और शाकभाजी। विशेषत: नींबू वंशीय फल (नारंगी, नींबू, चकोतरा आदि), आंवला, टमाटर, हिसालु (स्ट्राबेरी) आदि। हरे पत्ते वाली शाकभाजी भी विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत माना जाता है, बशर्ते कि पकाने आदि में विटामिन नष्ट न हो जाए।

विटामिन डी

विटामिन 'डी' का उत्पादन वस्तुत: तो शरीर के भीतर तब होता है, जब त्वचा को सूर्य की रश्मियां प्राप्त होती हैं। यह विटामिन वसा में घुलनशील होने से शरीर में लम्बे समय तक संगृहीत रह सकता है। जो लोग घर से बाहर खुले में काम करते हैं, उन्हें केवल थोड़ी मात्रा में ही उसे भोजन से प्राप्त करने की आवश्यकता रह जाती है। जो लोग धूप का बिलकुल सेवन नहीं करते हैं, उन्हें विटामिन डी की कमी रह सकती है। गहरे रंग की त्वचा वाले लोग भी (उनकी त्वचा में मेलानिन नामक पदार्थ के कारण) पर्याप्त मात्रा में विटामिन–डी से वंचित रह जाते हैं। दवा के रूप में मिलने वाले विटामिन डी को विटामिन डी-२ (केल्सीकेरोल) कहते हैं।

---

१. स्कर्वी नामक बीमारी में रोगी के जोड़ों में सूजन एवं दर्द, अस्थि-दौर्बल्य, मसूड़ों में खून गिरना, दांतों का गिर जाना आदि शिकायतें होती हैं। यह बीमारी भोजन में मांस की मात्रा का अनुपात बहुत अधिक एवं शाकाहार का बिलकुल अभाव होने पर होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विटामिन–डी भोजन-प्रणाली से केल्शियम तत्त्व का सात्मीकरण करने में योगदान करता है और अस्थि-निर्माण के नियमन में सहायक होता है। विटामिन–डी शरीर में से केल्शियम के अनावश्यक व्यय को रोकता है। बच्चों में विटामिन डी की कमी के कारण रिकेटस (सूखा) नामक रोग उत्पन्न होता है जिससे उनकी हड्डियां नरम और भंगुर हो जाती हैं तथा अस्थिपंजर विकृत आकार वाला बन जाता है। उनकी टांगें बाहर की ओर झुक जाती हैं और जोड़ों में सूजन आ जाती है। वयस्क व्यक्तियों में इसकी कमी से हड्डियां नरम हो जाती है, अस्थिपंजर विकृत आकार वाला हो जाता है और बार-बार हड्डी टूट जाती है। दूध और मक्खन इस विटामिन के अच्छे स्रोत माने गए हैं। पके-पकाए तैयार खाद्य-पदार्थों में सामान्य रूप से विटामिन डी मिलाया जाता है। ऐसी स्थिति में इस विटामिन की मात्रा का अतिक्रमण होना संभावित है।

विटामिन–ई

खाद्य-पदार्थों में यह विटामिन इतना व्यापक रूप से पाया जाता है कि इसकी कमी लगभग नहींवत् है। कृमिकृत तन्तुशोथ (cysticfibrosis) नामक बीमारी जिन बच्चों में पायी जाती है, उनकी आंतों में विटामिन–ई का सात्मीकरण समीचीन रूप से संभवत: न होने की वजह से ऐसा होता है। यह विटामिन प्रति-ऑक्सीकरणकारी होने से असंतृप्त वसाओं के ऑक्सीकरण का निरोध करता है। बाहरी विकिरणों एवं वातावरणजन्य प्रदूषणों के दुष्प्रभाव से यह शरीर को बचाए रखता है। विटामिन–ई मुख्य रूप से अंकुरित गेहूं, तैल, पूरे गेहूं से बने खाद्य पदार्थ, सलाद, दूध और घी में होता है।

विटामिन-के

शरीर में रक्त का थक्का बनाने में यह विटामिन अनिवार्य रूप से काम आता है। इसका उत्पादन आंत्रिक कीटाणुओं द्वारा होता है। प्रति-जैविकी (एण्टीबायोटिक्स) औषधियों के सेवन से जहां एक ओर रोगजनक कीटाणुओं का नाश हो जाता है, वहां साथ-साथ शरीर के लिए हितकर कीटाणुओं की आंत्रिक वसतियों का भी सफाया हो जाता है जिससे उनके द्वारा उत्पादित विटामिनों से शरीर वंचित रह जाता है। ऐसे समय में बाह्य स्रोत के द्वारा पर्याप्त मात्रा में उनकी आपूर्ति करना आवश्यक हो जाता है। यह विटामिन बहुत से खाद्य पदार्थों में पाया जाता है, पर विशेषत: पालक, अन्य पत्ते वाली सब्जी एवं टमाटर उल्लेखनीय हैं। विटामिन–ई की कमी के कारण रक्त का थक्का जमने की प्रक्रिया मन्द हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप तत्काल रक्त-स्राव (हेमरेज) होने का खतरा रहता है। हेमरेज के खतरे को रोकने के लिए शल्य-क्रिया (आपरेशन) और प्रसूति से पहले सामान्यत: रोगी को विटामिन–'के' दिया जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

खनिज लवण

समूचे शरीर का लगभग ४% हिस्सा खनिज लवण के रूप में होता है। ९२ प्राकृतिक मौलिक तत्त्वों में से ४० से भी अधिक तत्त्व हमारे शरीर के सुचारु संचालन के लिए आवश्यक हैं। अस्थि को बनाने वाले केल्शियम और फासफोरस जैसे तत्त्व शरीर में प्रचुर मात्रा में आवश्यक होते हैं, वहां अन्य तत्त्वों की आवश्यकता स्वल्प मात्रा में ही होती है। इन्हें सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व या सूक्ष्म पोषक की संज्ञा दी जाती है। प्रतिदिन मूत्र, मल एवं प्रस्वेद के माध्यम से खनिज-लवणों का विसर्जन होता रहता है जिनकी पूर्ति भोजन के द्वारा करना आवश्यक हो जाता है। खनिज-लवण शरीर के भीतर अम्ल-प्रत्यम्ल संतुलन बनाए रखने में सहयोगी बनते हैं एवं विद्युत् चालकता तथा रक्त स्कन्दन (गाढ़ा बनाना) जैसी नाना प्रकार की शारीरिक क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, अत: इनकी कमी से रोग होने की या विषाक्तीकरण की संभावना है। कुछ महत्त्वपूर्ण खनिज-लवणों के कार्यों का संक्षिप्त विवेचन यहां दिया जा रहा है।

केल्शियम

शरीर में पाए जाने वाले सब तत्त्वों में सबसे अधिक मात्रा में केल्शियम होता है। इसका ९९% हड्डियों और दांतों में होता है, फिर भी शेष १% हिस्सा कोशिकाओं की क्रियाओं के लिए अनिवार्य है। मांसपेशियों एवं हृदय के संकुचन में, तन्त्रिकाओं के विद्युत्-चालन में एवं रक्त के थक्के जमाने में केल्शियम की आवश्यकता होती है। शारीरिक तरल द्रव्यों में इसके आवश्यक अनुपात को बनाए रखने के लिए प्रति-दिन एक ग्राम केल्शियम ग्रहण करना जरूरी है। बच्चों और स्तनपान कराने वाली माताओं को इससे अधिक मात्रा में कमी हो, तो हड्डियों एवं दांतों के खनिजों का अल्पीकरण होने से उनकी मजबूती कम होती है। दूध और दूध से बने खाद्य पदार्थ में केल्शियम अधिक मात्रा में है, किन्तु पत्तीवाली सब्जियों में भी यह होता है।

फासफोरस

यह भी एक विपुल मात्रा में पाया जाने वाला अनिवार्य तत्त्व है। इसका ८०% हिस्सा तो केल्शियम के साथ संयुक्त स्थिति में हड्डियों एवं दांतों में होता है। न्यूक्लिक अम्लों एवं ए.टी.पी. के आवश्यक घटक के रूप में यह होता है। इसकी दैनिक खपत लगभग १.५ ग्राम है, किन्तु बच्चों और माताओं को इसकी अधिक मात्रा अपेक्षित होती है (जैसे केल्शियम की)। जिन खाद्य पदार्थों में केल्शियम विपुल मात्रा में होता है उनमें फासफोरस भी अधिक मात्रा में होता है (जैसे दूध)। यह सेम एवं गिरीदार फलों में भी होता है।

सोडियम

यह तत्त्व मुख्य रूप से तो कोशिकाओं के बाहर तरल द्रव्य में होता है। कोशिकाओं के भीतर तो इसकी केवल स्वल्प मात्रा ही होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अम्ल-प्रत्यम्ल-संतुलन तथा कोशिकाओं के परासरणी दबाव (osmotic pressure) की क्रिया में यह तत्त्व महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सामान्य रूप से लोग नमक (सोडियम क्लोराइड) बहुत-सी भोजन-सामग्री में डालते हैं किन्तु सोडियम की पूर्ति स्वत: सामान्य भोजन से बिना नमक का प्रयोग किए भी हो जाती है।

हृदय-रोग से पीड़ित व्यक्तियों को नमक की मात्रा को भोजन में बहुत कम कर देना चाहिए, क्योंकि नमक रक्त-चाप को बढ़ाता है जिससे उच्च रक्त-चाप की बीमारी होती है। सामान्य स्थिति में गुर्दे, सोडियम के आवश्यक अनुपात को शरीर में बनाए रखते हैं, जिसके लिए उन्हें मूत्र से उसका पुनरवशोषण करना पड़ता है। पर यदि अधिक प्रस्वेदन के द्वारा सोडियम का विसर्जन अत्यधिक हो जाए, तो उसकी पूर्ति बाहर से शीघ्र आवश्यक हो जाती है. अन्यथा दुर्बलता, ऐंठन एवं अतिसार होने की सम्भावना रहती है।

पोटेशियम

सोडियम से विपरीत यह तत्त्व मुख्य रूप से कोशिकाओं के भीतर पाया जाता है। शरीर में जल की मात्रा को संतुलित रखने के अतिरिक्त मात्रा से थोड़ा-बहुत न्यूनाधिक होने से हृदय के कार्य में गड़बड़ी हो सकती है। करीब-करीब सभी खाद्य पदार्थों में यह उपलब्ध होता है; अत: उसकी कमी क्वचित् ही देखी जाती है।

लोहा

लोहा हमारे शरीर का एक मुख्य खनिज है। लाल रक्त-कोशिकाओं में विद्यमान हेमोग्लोबिन, कंकाली मांसपेशियों में विद्यमान मायोग्लोबिन तथा विभिन्न किण्वकों के संघटक के रूप में यह होता है। विपुलता से पाए जाने वाले तत्त्वों में यह नहीं है। वस्तुत: एक वयस्क व्यक्ति के शरीर में लोहे की मात्रा केवल ४.५ ग्राम होती है (जबकि पोटाशियम की मात्रा १२५ ग्राम होती है)। इसका आधा हिस्सा हेमोग्लोबिन में होता है। लोहा शरीर में संगृहीत भी किया जा सकता है, पर संग्रहीत मात्रा की सीमा होने से भोजन द्वारा इसका नियमित ग्रहण आवश्यक बन जाता है। महिलाओं के मासिक स्राव के माध्यम से प्रतिमाह लोहे की उल्लेखनीय मात्रा शरीर से बाहर चली जाती है, अत: उसकी पुन: संपूर्ति आवश्यक होती है, जिसके न होने पर उन्हें लोहे की कमी को भुगतना पड़ता है। सेम, मटर, पूरे गेहूं, पालक और आलूचा (या आलूबुखारा) में प्रचुर मात्रा में लोहा पाया जाता है।

यह तत्त्व शरीर में व्यापक रूप में फैला हुआ है। इसका अधिकांश हिस्सा अस्थियों में ही होता है, शेष हिस्सा कोशिकाओं में और रक्त-सीरम

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में पाया जाता है। ग्लूकोज एवं ए.टी.पी. जैसे महत्त्वपूर्ण द्रव्यों की अपचयात्मक अभिक्रिया में मैग्नेशियम एक महत्वपूर्ण सहभागी बनता है। जब कभी यह कोशिका के बाहर के तरल द्रव्य में अत्यधिक मात्रा में विद्यमान होता है, तब यह तन्त्रिका के विद्युत-आवेग के संचालन तथा मांसपेशियों की क्रिया को शल्य कर देता है। रासायनिक दृष्टि से मैग्नेशियम का स्वरूप केल्शियम के सदृश होता है। अनेक खाद्य-पदार्थों में यह व्यापक रूप से होता है, किंतु हरी साग सब्जी में विशेषत: होता है।

तांबा और मैंगनीज

ये दोनों सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व हैं जो शरीर के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं। ये अनेक चयापचयिक किण्वकों के संघटक है अथवा उनको उत्तेजित करते हैं। तांबा हेमोग्लोबिन का घटक न होते हुए भी उसके निर्माण में अनिवार्य होता है। समूचे शरीर में यद्यपि तांबे की कुल मात्रा केवल १०० मिलीग्राम जितनी ही होती है, फिर भी इसकी कमी से रक्ताल्पता एवं अन्य गंभीर दोष उत्पन्न हो सकते हैं। (जैसे—कभी-कभी केवल दूध पर रहने वाले शिशुओं में तांबे की कमी से ऐसा होता है)।

सामान्य भोजन द्वारा मैंगनीज पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाता है। इसकी अधिक मात्रा शरीर को विषाक्त बना सकती है।

क्लोरिन, आयोडीन, फ्लोरीन

रासायनिक दृष्टि से ये तीनों एक ही परिवार के हैं। क्लोरीन "क्लोराइड आयनों" के रूप में पूरे शरीर में पर्याप्त मात्रा में होता है। ये आयन लाल रक्त-कणों में विसृत होते रहते हैं, जिससे आयनों का संतुलन बना रहता है। आमाशय में विद्यमान हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का भी यह एक घटक है। क्लोरीन की आपूर्ति मुख्यत: नमक से होती है।

आयोडीन मुख्यत: थायराइड ग्रंथि में ही पाया जाता है। थायराइड के स्राव थायराक्सीन के संश्लेषण में यह एक अनिवार्य तत्त्व है। समुद्र-किनारे से दूर के भू-भागों में रहने वाले लोगों को उपलब्ध होने वाले भोजन और पानी में आयोडीन की मात्रा की कमी रहने की संभावना अधिक होने से उन्हें गलगण्ड (goitre) और अन्य बीमारियों से पीड़ित होना पड़ता है। आयोडीन युक्त नमक आयोडीन की कमी को दूर करता है।

फ्लोरीन दांतों एवं हड्डियों में पाया जाता है। इसकी आवश्यकता दैनिक आहार में है या नहीं, इस विषय में अब तक कोई निश्चित अभिमत नहीं है, फिर भी दांतों की सड़न को रोकने के लिए इसका उपयोग सामान्य रूप से किया जाता है। अधिक मात्रा में इसके प्रयोग से दांत चितिदार या रंगीन हो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जाते हैं तथा कंकाली विकृतियां या विकलांगता भी हो सकती है। कुछ क्षेत्रों में यह तत्त्व (फ्लोरीन) पीने के पानी में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है।

जस्ता और कोबाल्ट

ये दोनों तत्त्व अधिकांश खाद्य-पदार्थों एवं नल के पानी में पाए जाते हैं। जस्ता अनेक किण्वकों का अभिन्न अंग है और उसका उपयोग रक्त-संचार द्वारा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को फेफड़ों तक पहुंचाना, ऊर्जा प्राप्त करने के लिए अपचयात्मक अभिक्रियाओं में और पाचन-क्रिया जैसी शरीर की अनेक महत्त्वपूर्ण क्रियाओं में होता है।

कोबाल्ट विटामिन बी-२ का अनिवार्य घटक है, जो कि लाल रक्त-कणों के परिपाक में आवश्यक होता है।

अन्य खनिज तत्त्व जिनकी आवश्यकता शरीर की सामान्य क्रियाओं के लिए होती हैं इस प्रकार हैं—**गंधक**— प्रोटीन घटक के रूप में। **क्रोमियम**— ग्लूकोज से ऊर्जा प्राप्त करने की अपचय क्रिया में। **मोलिब्डीनम**— किण्वक-क्रियाओं में भाग लेने वाला। **सेलेनियम**— यकृत की क्रिया में महत्त्वपूर्ण। **वेनेडियम**— वृद्धि में आवश्यक। कुछ एक सूक्ष्म-मात्रिक खनिज-लवण भोजन और पानी में मिलकर शरीर में पहुंचते जाते हैं और स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करते हैं। औद्योगिक जल-प्रदूषण से यह समस्या और अधिक गहरी बनती जा रही है। **पारद**— अवशेष (शरीर में रह जाने पर) भयंकर नाड़ी-तंत्रीय क्षति पहुंचा सकते हैं। **केडमियम**— नामक धातु पानी के नलों से पीने के पानी में मिलकर हृदय-रोग का कारण बन सकती है। केडमियम प्राकृतिक अवस्था में गेहूं में भी पाया जाता है, पर गेहूं के दाने में जस्ता भी मौजूद रहता है, जो शरीर में केडमियम के सात्मीकरण को रोक देता है। गेहूं के आटे को उजला बनाने के लिए जब चोकर को उससे अलग कर दिया जाता है, तब उसके साथ-साथ उसमें विद्यमान जस्ता भी निष्कासित हो जाता है, जिससे गेहूं का धातु-संतुलन से बिगड़ जाता है, क्योंकि गहराई में विद्यमान केडमियम वहीं रह जाता है।

संतुलित भोजन

पिछले पृष्ठों में हमने विभिन्न पदार्थों की जटिल पारस्परिक क्रियाओं के विषय में कुछ चर्चा की। इस जानकारी से हमें भली-भांति समझने में तथा संतुलित भोजन का चयन करने में सहायता मिलेगी। आहारशास्त्रियों के अनुसार—भोजन से आवश्यक शारीरिक ऊर्जा की आपूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में केलोरी प्राप्त होनी चाहिए। इसलिए कार्बोज (श्वेतसार और शर्कराएं) और थोड़ी बहुत वसा अनिवार्य है। दूसरे में, ऊतकों के निमार्ण एवं उनकी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मरम्मत के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन प्राप्त होना चाहिए—वयस्क व्यक्ति के लिए दैनिक आहार में ६५ से १०० ग्राम प्रोटीन पर्याप्त है। इनके अतिरिक्त संतुलित भोजन के द्वारा आवश्यक विटामिनों एवं खनिज-लवणों की पूर्ति भी होनी चाहिए और अन्त में पर्याप्त मात्रा में जल एवं सेल्यूलोज जैसे रेशेदार पदार्थ का होना भी जरूरी है, जिनसे आंतों की क्रिया सुचारु रूप से चलती रहे और विसर्जन-क्रिया में बाधा न आए।

"शरीर की आहार-संबंधी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भोजन में नाना पदार्थों का समावेश किया जाता है। भोजन के निम्नलिखित प्रत्येक प्रकार का प्रतिनिधित्व, उस प्रकार के एक या अधिक सदस्यों द्वारा पर्याप्त रूप से होने पर संतुलित भोजन बनता है—

१. अनाज और धान्य से बने खाद्य पदार्थ
२. दूध या दूध से उपलब्ध होने वाले पदार्थ
३. फल और शाक-सब्जी
४. फलीदार शिम्ब (सेम, मटर आदि)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

केलोरी की आवश्यकता

कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही विश्राम क्यों न करे, उसके शरीर में ऊर्जा की खपत की दर एक निश्चित सीमा से कम नहीं होगी। यह सीमा शरीर की मूलभूत कोशिका-गत क्रियाओं एवं अन्य शारीरिक क्रियाओं को बनाए रखने के लिए न्यूनतम ऊर्जा-व्यय का स्तर है, जिसे "मूलभूत चयापचयिक दर" (basic metabolic rate) कहा जाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति घूमता-फिरता है या अन्य शारीरिक श्रम करता है, वैसे-वैसे ऊर्जा-व्यय में तेजी से वृद्धि होती है। ऊर्जा-व्यय को केलोरी (Calorie) में नापा जाता है। पुरुषों में इसका न्यूनतम औसतन दैनिक व्यय लगभग १६०० से १८०० केलोरी है, जबकि महिलाओं में यह लगभग १३०० से १५०० केलोरी है। थोड़ा भी अधिक श्रम, जैसे—उठ-बैठ करना, खड़ा होना, चलना, व्यायाम करना उक्त संख्या में वृद्धि का निमित्त बनता है।[1] इस प्रकार केलोरी की आवश्यकता मुख्यत: इस बात पर आधारित है कि व्यक्ति कितना शारीरिक श्रम करता है। उदाहरणार्थ, एक निरन्तर बैठे-बैठे काम करने वाले व्यक्ति (विद्यार्थी,

---

१. सोने में ६० केलोरी प्रतिघंटा व्यय होती है।
बैठने में ७० केलोरी प्रतिघंटा व्यय होती है।
खड़ा रहने में १०० केलोरी प्रतिघंटा व्यय होती है।
चलने में २०० केलोरी प्रतिघंटा व्यय होती है।
तैरने में ५०० केलोरी प्रतिघंटा व्यय होती है।
दौड़ने में ६०० केलोरी प्रतिघंटा व्यय होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कार्यालय-क्लर्क, टाइपिस्ट आदि) को लगभग २२०० से २५०० केलोरी तक दैनिक आवश्यकता रहेगी। मजदूर या अत्यधिक श्रम करने वाला ८००० केलोरी तक ऊर्जा-व्यय कर देता है। यदि इस व्यय की पूर्ति दैनिक भोजन से न हो तो व्यक्ति का वजन कम होता जाएगा, क्योंकि ऊर्जा-पूर्ति के लिए शरीर में आरक्षित संचित सामग्री (वसा आदि) का व्यय होता जाएगा। इससे विपरीत, यदि व्यय से अधिक केलोरी दैनिक भोजन के द्वारा ग्रहण की जाती है, तो अवशिष्ट ऊर्जा का संग्रह वसा के रूप में शरीर में होने लगेगा और व्यक्ति का वजन बढ़ता जाएगा। मानसिक श्रम चाहे जितना भी तीव्र हो या मानसिक थकान उत्पन्न करने वाला हो, फिर भी केलोरी का व्यय बहुत अधिक नहीं होता है। आवेशों और आवेगों के द्वारा ऊर्जा-व्यय में कुछ वृद्धि होती है, क्योंकि उस स्थिति में हृदय-गति एवं श्वसन-गति में वृद्धि होती है।

यद्यपि शारीरिक श्रम केलोरी की आवश्यकता को निर्धारित करने में एक प्रमुख निमित्त बनता है, फिर भी वह एकमात्र कारण नहीं है। अन्य कारणों में शरीर का परिमाण, आयु आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चों में वृद्धि की क्रिया के कारण उनके परिमाण के अनुपात में वयस्क व्यक्ति की अपेक्षा अधिक केलोरी की आवश्यकता रहती हैं। वयस्क होने के बाद केलोरी की आवश्यकता क्रमशः कम होती जाती है। इसलिए मध्यम वय का व्यक्ति यदि युवावस्था में जितना भोजन करता था उतना ही करता रहे तो, उसका वजन बढ़ता जाएगा।

मोटापा अथवा अति-वजन आधुनिक युग की एक प्रमुख स्वास्थ्य-समस्या है। इसका कारण हैं—प्रतिदिन व्यय की अपेक्षा केलोरी के ग्रहण की मात्रा का अधिक होना। अतिरिक्त अवशेष ऊर्जा को संचित सामग्री (वसा आदि) के रूप में शरीर में संगृहीत किया जाता है। मोटापा धीरे-धीरे और छद्म रूप में बढ़ सकता है। हम कभी-कभी अधिक मात्रा में भोजन करते हैं या अपच्य भोजन करते हैं, पर बहुत बार तो अपच्य भोजन को अधिक मात्रा में ग्रहण कर लेते हैं। भोजन में अतिरेक और श्रम में कमी जब सम्मिलित होते हैं तब समस्या अधिक जटिल बन जाती है।

कुछ व्यक्तियों में इस समस्या का कारण शरीर की आवयविक विकृति भी हो सकता है, जैसे—थायराइड, पिच्यूटरी या अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की गड़बड़ी। यदि यह समस्या एक ही परिवार के अनेक सदस्यों में हो तो समझना चाहिए कि आनुवंशिक तत्त्व इसके लिए जिम्मेदार हो सकता है।

क्षुधा और तृप्ति के नियमन-केन्द्र हमारे मस्तिष्क में हायपोथेलेमस में होते हैं, इसलिए प्रस्तुत समस्या का मूल हायपोथेलेमस की विकृति में भी हो सकता है। अपनी माताओं द्वारा जिन बच्चों को आवश्यकता से अधिक भोजन कराया जाता है, वे शरीर में अधिक वसा (चर्बी) की कोशिकाओं का पल्लवन

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

करते हैं और वयस्क होने पर उन्हें मोटापे की समस्या द्वारा इसका फल भोगना पड़ता है।

मोटापे से मनुष्य की मृत्यु समय से पूर्व होने की संभावना बढ़ती है—यह तथ्य अधिक वजन से मुक्त रहने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करता है। अतिरिक्त वजन कई प्रकार से हृदय पर लगातार दबाव डालता है। अतिरिक्त वजन को गतिमान् बनाने के लिये मांसपेशियों को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिन्हें पर्याप्त रक्त पहुंचाने के लिए हृदय को अधिक श्रम करना पड़ता है। शरीर में जहां अतिरिक्त वसा का संचय होता है, वहां-वहां प्रचुर मात्रा में रक्त की आपूर्ति करनी पड़ती है। उन्हें रक्त पहुंचाने के लिए लाखों की संख्या में अतिरिक्त कोशिकाओं का निर्माण करना पड़ता है, जिससे रक्त-परिसंचरण में अवरोध बढ़ता है एवं रक्त-चाप में वृद्धि होती है। मोटे व्यक्तियों की धमनियों के काठिन्य, पित्त की थैली में पत्थरी, वृक्क-शोथ (गुर्दे की सूजन) एवं अन्य बीमारियों के शिकार बनने की संभावना बढ़ जाती है।

मोटापा और आहार-विवेक

वजन को कम करने और इसे आवश्यकता से अधिक न बढ़ने देने के लिए सबसे ज्यादा विश्वसनीय मार्ग है—आहार-संबंधी आदतों में कठोर परिवर्तन। हमारा भोजन हमारे पूर्वजों के भोजन से अत्यन्त भिन्न है। आजकल अधिकांश खाद्य सामग्री तैयार रूप में बाजार आदि से प्राप्त की जाती है। पदार्थों में न केवल मूल्यवान् विटामिन निष्कासित कर दिए गए होते हैं, पर उनमें मिलाए गए परिरक्षक आदि पदार्थ शरीर के लिए हानिकारक होते हैं।

हमारे पूर्वजों के भोजन में आज की अपेक्षा शर्करा की मात्रा बहुत कम होती थी। वह भी अधिकांश फल आदि से प्राकृतिक रूप में ही प्राप्त हो जाती थी। दानेदार (सफेद) चीनी का भोजन में प्रयोग २०० वर्ष तक केवल नाम मात्र था, पर उसके बाद में उसका प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। कुछ अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार तो दानेदार चीनी, एथेरोस्क्लेरोसिस (धमनियों की भित्ति में वसायुक्त पदार्थों का होना) नामक बीमारी के लिए मुख्य रूप से दोषी है। चीनी का निरन्तर अधिक प्रयोग अग्न्याशय (pancreas) के भीतर की अन्तःस्रावी ग्रंथियों की कोशिकाओं को जला देता है जिससे अग्न्याशय शरीर के भीतर होने वाली कार्बोज-सम्बन्धी अभिक्रियाओं का नियमन करने में अक्षम हो जाता है।

प्रति सप्ताह १/२ से १ किलोग्राम वजन को कम करने के लिए एक साथ भोजन में कमी करने की अपेक्षा कुल केलोरी की मात्रा को उस अनुपात में कम करना अधिक प्रभावी सिद्ध होगा। भोजन में अचानक किए गए परिवर्तन

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से पेट अस्त-व्यस्त हो सकता है। सारे भोजन में एक साथ की जाने वाली कमी से विटामिन, खनिज, लवण और जल जैसी अनिवार्य सामग्री से भी व्यक्ति वंचित हो जाता है।

एक साथ अधिक मात्रा में केलोरी को कम करने से या केवल एक या दो प्रकार के खाद्य पदार्थों पर निर्भर रहने से प्रारम्भ में तो कुछ परिणाम दिखाई देता है, पर यह प्रारंभिक वजन की कमी केवल पानी की कमी से ही हो सकती है, उसके बाद प्राय: वजन कम होना बंद हो जाता है। इस अवधि तक अल्पभोजी व्यक्ति प्राय: क्षुधातुर रहने लग जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है और एकदम ऊब जाता है। अल्पभोजन करने की उसकी प्रतिज्ञा उस समय टूट जाती है जब वह किसी दिन किसी व्यक्ति को हलवा खाते देखता है। प्रतिज्ञा को तिलांजलि दे दी जाती है और त्वरित गति से वजन पुन: बढ़ जाता है।

अपथ्य भोजन (मात्रा एवं गुण दोनों की अपेक्षा से अपाच्य) स्वास्थ्य-सम्बन्धी उतनी ही समस्याओं को पैदा करने वाला है जितनी आधुनिक शहरी जीवन के तनावों से होती है। यह सही है कि खाने पीने की आदतों और रिवाजों को छोड़ना बहुत कठिन है, फिर भले ही वे अहितकर हों। फिर भी ऐसे अनेक उपाय हैं जिनके माध्यम से हम अपनी-पद्धति को बहुत कठोर रूप से बदले बिना भी अपनी भोजन-सम्बन्धी आदतों को सुधार सकते हैं। खाने-पीने के सम्बन्ध में कुछ नियमों के पालन के साथ भोज्य पदार्थों में क्रमिक परिवर्तन के द्वारा हम अपने स्वास्थ्य को काफी सुधार सकते हैं। जैसे—पत्तीवाली हरी सब्जियों से विटामिन और खनिज लवण तो अधिक मिलते हैं तथा केलोरी कम मिलती है। इसके साथ-साथ जब इनका प्रयोग होता है तब क्षुधा की तृप्ति होती है और मल-विसर्जन भली-भांति होता है।

अतिरिक्त शारीरिक श्रम एवं नियमित व्यायाम के द्वारा ऊर्जा के व्यय को कुछ बढ़ाकर वजन को कम किया जा सकता है। इस प्रकार का सारा कार्यक्रम अनभ्यस्त हृदय पर अत्यधिक दबाव देने वाले कठोर व्यायाम का धमाका न होकर योजनाबद्ध, क्रमिक और आदतों में स्थायी परिवर्तन लाने वाला होना चाहिए। नियमित हलके व्यायाम से हृदय के दौरे पड़ने के खतरे को कम किया जा सकता है।

खाने-पीने के नियम

(१) भोजन के समय चित्त को पूर्ण शांत एवं प्रसन्न रखें। आवेश, आवेग के अतिरेक में भोजन न करें। क्रोध, उत्तेजना आदि की स्थिति में किया गया पथ्य भोजन अपथ्य हो जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(२) भोजन के समय भावक्रिया का प्रयोग करें अर्थात् चित्त को भोजन में रखें, अन्य बातों पर चिन्तन न करें।

(३) पेटभर भोजन न करें—अपने पेट के एक चौथाई हिस्से को खाली रखें। थोड़े दिन के अभ्यास के बाद तृप्ति न होने की अनुभूति समाप्त हो जाएगी।

(४) प्रत्येक कवल को निगलने से पहले भली-भांति चबाना आवश्यक है। भली-भांति चबाने का अर्थ है—चबाया हुआ भोजन तरल-सा बन जाता है एवं गले से नीचे सरलता से उतर जाता है। इस तरह ग्रहण किए हुए आहार का अधिकतम उपयोग होता है।

क्रमिक परिवर्तन द्वारा पथ्य आहार-योजना

आधुनिक आहार-शास्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत योजना:

प्रथम चरण: परिरक्षक पदार्थ (preservatives) एवं रंग, सुगंध आदि रासायनिक पदार्थों से युक्त सभी खाद्य पदार्थों का त्याग करें।

सफेद दानेदार चीनी का वर्जन करें। अधिक चीनी-युक्त मिठाइयां, मुरब्बा आदि का सेवन न करें। मीठा बनाने के लिए चीनी की बजाय खंडसारी (या शक्कर), गुड़ या शहद का उपयोग कम हानिकारक होता है। रोटी आदि बनाने में सफेद आटे की जगह चोकर सहित आटा अधिक लाभदायी है। मेदे की चीजों को हो सके वहां तक प्रयोग न करें। तली हुई चीजों का वर्जन करें।

(आमिषभोजी के लिए) यदि आमिषाहार सर्वथा एक साथ न छोड़ सकें, तो क्रमशः उनमें कमी करें।

रासायनिक नमक की अपेक्षा प्राकृतिक नमक (समुद्र से प्राप्त) अधिक लाभदायी है।

दूसरा चरण: काली-मिर्च, लाल-मिर्च और अन्य गर्म-मसालों में कमी करें। (जीरा, हल्दी आदि में आपत्ति नहीं है)। चाय या कॉफी को बंद करें। दूध, फलों के रस या ताजे फलों का प्रयोग लाभदायी है। (आमिषभोजी आमिषाहार में और अधिक कमी करें।)

तीसरा चरण: भोजन में अन्न, सूखा मेवा, गिरीदार फल, सब्जी, सलाद, दूध आदि की मात्रा बढ़ाने से पोषक आहार का पर्याप्त रूप बन जाएगा।

(आमिषभोजी, आमिषाहार बिलकुल बंद करें।)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

५
चयापचय

शरीर में निरन्तर चलने वाली विविध रासायनिक अभिक्रियाओं को 'चयापचय' की संज्ञा दी जाती है। पृथ्वी पर बसने वाले सभी प्राणियों के शरीर रासायनिक तत्त्वों से निर्मित हैं, जिसमें मुख्य तत्त्व कार्बन है। हमारा शरीर भी वैसा ही है। हम क्रियाशील प्राणी हैं, क्रियाओं के संचालन के लिए हमें निरन्तर ऊर्जा की आवश्यकता रहती है। इस ऊर्जा को हम खाने-पीने के पदार्थों में विद्यमान रासायनिक यौगिकों से प्राप्त करते हैं। शरीर की वृद्धि और मरम्मत के लिए आवश्यक निर्माण-सामग्री भी भोजन से ही मिलती है, पर वह भी तैयार रूप में प्राप्त नहीं होती है—उन्हें भी शरीर के भीतर निर्मित करना पड़ता है।

भोजन में विद्यमान कार्बोज, प्रोटीन और वसा को पहले पाचन-क्रिया द्वारा सरल और सूक्ष्म घटकों में विभाजित किया जाता है ताकि वे कोशिकाओं की झिल्ली में से गुजर सकें एवं कोशिकाओं के भीतर प्रवेश पा सकें। कोशिकाओं के भीतर इन सूक्ष्म घटकों पर और रासायनिक अभिक्रियाएं की जाती हैं। इन अभिक्रियाओं को चयापचय (Metabolism) कहा जाता है, जो दो प्रकार की होती हैं—

१. अपचयात्मक अभिक्रियाएं (CATABOLIC REACTIONS)

इन क्रियाओं के दौरान कोशिकाओं में प्रविष्ट सूक्ष्म द्रव्यों को सूक्ष्मतर तत्त्वों में विभाजित किया जाता है अथवा उनके ऑक्सीकरण के द्वारा उनमें संगृहीत रासायनिक ऊर्जा को मुक्त किया जाता है।

२. चयात्मक अभिक्रियाएं (ANABOLIC REACTIONS)

इन क्रियाओं के दौरान कोशिकाओं के भीतर प्रविष्ट सूक्ष्म द्रव्यों का संश्लेषण कर शरीर के मूलभूत एवं अभिलाक्षणिक रसायनों का निर्माण किया जाता है, जो अपने आप में अधिक जटिल पदार्थ होते हैं।

शरीर की कोशिकाओं में ये दोनों—विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक अभिक्रियाएं निरन्तर चलती रहती हैं। इन दोनों प्रकार की अभिक्रियाओं की समग्रता ही "चयापचय" है।

मांसपेशियों के संकुचनों, तंत्रिकाओं के विद्युत्-आवेगों के प्रसारण आदि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रवृत्ति के लिए आवश्यक ऊर्जा की आपूर्ति अपचयात्मक अभिक्रियाओं द्वारा की जाती है। खाद्य पदार्थों में संगृहीत रासायनिक ऊर्जा को ऊर्जा के अन्य रूपों में—उष्मा, विद्युत् आदि में परिवर्तित कर दिया जाता है। (ऊष्मा के रूप में प्राप्त) ऊर्जा को अस्थायी रूप से संगृहीत करना आवश्यक होता है। इसे ए.टी.पी. नामक रासायनिक अणुओं के रूप में सुविधापूर्वक संगृहीत किया जाता है। जैसे-जैसे ऊर्जा की आवश्यकता होती जाती है, वैसे-वैसे ए.टी.पी. के विश्लेषण द्वारा नियंत्रित रूप से ऊर्जा को प्राप्त किया जाता है। यदि आग की लपट की तरह एक साथ सारी ऊर्जा को मुक्त कर दिया जाय, तो उससे कोशिकाएं जल कर नष्ट हो सकती हैं। इस प्रकार ए.टी.पी. के अणु एक रूप में "ऊर्जा-मुद्रा" का कार्य करते हैं।

जब तक जीवन है, तब तक चयापचयिक अभिक्रियाएं निरन्तर चलनी चाहिए। यदि बाहर से प्राप्त भोजन के द्वारा ऊर्जा के आधार-रूप ए.टी.पी. अणुओं की पुन: पूर्ति नहीं की जाती है, तो शरीर के भीतर के ऊतकों का ही अपचय कर दिया जाता है। ऊर्जा-प्राप्ति के इस क्रम में प्राथमिकता कार्बोज और वसाओं को दी जाती है, जबकि प्रोटीनों के एमिनो अम्लों को मुख्य रूप से नए निर्माण के लिए छोड़ दिया जाता है। अपचयात्मक अभिक्रियाओं को चयात्मक की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। यदि दोनों प्रकार की अभिक्रियाओं के लिए पर्याप्त सामग्री न हो, तो चयात्मक अभिक्रियाओं को टाल दिया जाता है।

कार्बोज-चयापचय

एक थके-मांदे व्यक्ति को मिश्री की डली या फल का टुकड़ा "तत्काल ऊर्जा" प्रदान करता है, क्योंकि खाद्य-पदार्थ में विद्यमान द्राक्षा-शर्करा सीधे आमाशय की भीतरी परत द्वारा तुरन्त ही आत्मसात् कर ली जाती है तथा वहीं से वह रक्त-प्रवाह के माध्यम से कोशिकाओं तक पहुंचा दी जाती है।

जल, सामान्य लवण, सरल शर्कराएं, मदिरा तथा अनेक औषध जैसे सरल संरचना वाले खाद्य पदार्थों का पाचन आमाशय में ही पूर्ण हो जाता है और इनके और अधिक पाचन की आवश्यकता नहीं रहती। जटिल रचना वाली शर्कराएं एवं श्वेतसार को पचाने में अधिक समय लगता है, किन्तु अन्ततोगत्वा वे भी ऊर्जा के उत्पादन में अपना योगदान देते हैं।

श्वेतसार के पाचन का मुख्य उत्पादन द्राक्षा-शर्करा (ग्लुकोज़) है, अत: रक्त में शर्करा का अस्तित्व प्राय: इसी रूप में होता है। पाचन-तंत्र से शोषित होने वाली विभिन्न शर्कराओं का शरीर में निम्न प्रकारों में मुख्य रूप से रूपान्तरण होता है-

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

१. वे रक्त-शर्करा के रूप में प्रवाहित होती हैं।

२. वे यकृत में पहुंचाई जाती हैं और ग्लाइकोजन के रूप में परिवर्तित कर उन्हें वहीं संगृहीत कर दिया जाता है।

३. कंकालीय मांस-पेशियों में इन्हें ग्लाइकोजन के रूप में परिवर्तित कर संगृहीत किया जाता है।

४. इन्हें वसा के रूप में परिवर्तित कर शरीर में विभिन्न स्थलों पर चर्बी के रूप में जमा किया जाता है।

५. इन्हें एमिनो एसिड्स के रूप में परिवर्तित किया जाता है।

६. ऊतकों में इनके आक्सीकरण की प्रक्रिया द्वारा इन्हें ऊर्जा-स्रोतों के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है।

७. मूत्र के द्वारा उनका निष्कासन होता है (जैसा कि मधु प्रमेह की बीमारी में होता है)।

रक्त-शर्करा

भोजन करने के तुरन्त बाद रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़कर उच्चतम स्तर तक पहुंच जाती है और फिर त्वरित गति से कम हो जाती है। जब रक्त में शर्करा का अनुपात बहुत अधिक मात्रा में हो जाता है, तब एक स्वत: संचालित नियामक तंत्र सक्रिय हो उठता है जिससे क्लोम ग्रंथि का अन्त:स्रावी हिस्सा इन्सुलिन रक्त-प्रवाह में से शर्करा को निकाल कर ऊतकों की कोशिकाओं में प्रविष्ट कराता है। यदि इससे विपरीत रक्त में शर्करा का अनुपात सामान्य मात्रा से कम हो जाता है तो दूसरे नियामक तंत्र सक्रिय बनते हैं। इसके द्वारा यकृत में संगृहीत ग्लाइकोजन को द्राक्षा-शर्करा में परिवर्तित कर रक्त प्रवाह में भेज दिया जाता है। साथ ही साथ द्राक्षा-शर्करा के खपत के वेग को कम कर कोशिका में विद्यमान वसा का अपचय किया जाता है तथा आंतों से द्राक्षा-शर्करा के शोषण का वेग बढ़ा दिया जाता है।

यकृत कार्बोज-चयापचय में एक केन्द्रीय भूमिका अदा करता है। यहां अतिरिक्त द्राक्षा-शर्करा को रक्त प्रवाह से निकाल कर ग्लाइकोजन में परिवर्तित कर संगृहीत किया जाता है। यदि वह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो तो अतिरिक्त मात्रा को चर्बी के रूप में परिवर्तित कर शरीर के विभिन्न भागों में संगृहीत किया जाता है। यदि बाहर से द्राक्षा-शर्करा की आपूर्ति कम होती है, तो यकृत ही ग्लाइकोजन के पुन: द्राक्षा-शर्करा में बदलने का कार्य करता है। विशेष परिस्थितियों में आवश्यक होने पर यकृत कार्बोजेतर पदार्थों से भी द्राक्षा-शर्करा को संश्लिष्ट कर सकता है। उपवास आदि अनाहारिक अवस्था में, पहले पहल

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

यकृत में संग्रहीत ग्लाइकोजन को काम में लिया जाता है। उसके पश्चात् वसा के संग्रह को छेड़ा जाता है। इसके बावजूद भी यदि पूर्ति न हो तो ऊतकों में रहे हुए प्रोटीन का अपचय किया जाता है और उसमें से ग्लुकोज़ तैयार कर ऊर्जा प्राप्त कर ली जाती है।

प्रोटीन का चयापचय

पाचन-तंत्रीय प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रोटीन को पहले एमिनो एसिड्स में विश्लिष्ट किया जाता है तथा बाद में रक्त संचार के माध्यम से उन्हें कोशिकाओं तक पहुंचा दिया जाता है। कोशिकाओं में फिर विपरीत क्रिया होती है जिससे पुनः प्रोटीन को संश्लिष्ट किया जाता है। इस प्रकार की लम्बी प्रक्रिया दो कारणों से आवश्यक होती है—पहला कारण यह है कि भोजन में विद्यमान प्रोटीन के अणु इतने बड़े होते हैं कि कोशिका की झिल्ली में प्रवेश नहीं कर सकते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि भोजन के प्रोटीनों की रासायनिक रचना मानव-शरीर के लिए उसी रूप में प्रायोग्य नहीं है। दुनिया भर के प्राणियों में विद्यमान लाखों प्रकार के प्रोटीन की रासायनिक रचना केवल बीसेक प्रकार के एमिनो एसिड्स के संश्लेषण से ही होती है। इसी वजह से भोजन आमिष हो या निरामिष हो, दोनों प्रकार से प्राप्त प्रोटीनों को क्रमशः विश्लेषण और संश्लेषण के द्वारा मनुष्य शरीर के लिए प्रायोग्य प्रोटीन के रूप में निर्मित किया जा सकता है।

प्रोटीन के चयापचय में अपचय की अपेक्षा चय की क्रियाएं अधिक मात्रा में होती हैं। प्रोटीनेतर पदार्थों के संश्लेषण में भोजन के प्रोटीन का कभी-कभी उपयोग किया जाता है।

कोशिकाओं और ऊतकों में प्रोटीन का संग्रह किया जा सकता है। पर प्रत्येक प्रकार के ऊतकों की संग्रह-शक्ति की एक सीमा होती है। उस सीमा से अधिक प्रोटीन की मात्रा का अपचय कर दिया जाता है। अपचय की क्रिया मुख्य रूप से यकृत में होती है। प्रोटीन-संश्लेषण के लिए आवश्यक एमिनो एसिड्स की मात्रा यदि आवश्यकता से अधिक हो जाती है, तो यकृत में उसका रूपान्तरण कर दिया जाता है और अन्ततोगत्वा यूरिया के रूप में उसका परिवर्तन होकर मूत्र के द्वारा उसे बाहर निकाल दिया जाता है।

एक ग्राम प्रोटीन से मिलने वाली ऊर्जा ४ केलोरी जितनी होती है, जो कि कार्बोज के १ ग्राम से प्राप्त ऊर्जा के समान ही है, किन्तु उतनी वसा से प्राप्त ऊर्जा की तुलना में यह लगभग आधी है, क्योंकि १ ग्राम वसा से लगभग ९ केलोरी जितनी ऊर्जा मिलती है।

प्रोटीन-संश्लेषण की प्रक्रिया शरीर के विकास और वृद्धि (ऊतकों की

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नव रचना) के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण है कि प्रोटीन चयापचय की प्रक्रिया में अनेक प्रकार के अन्तःस्रावी हार्मोन भाग लेते हैं। विकास हार्मोन, एड्रोजन (विशेषत: टेस्ट्रोस्टेरोन नामक गोनाड्स के हार्मोन), थाइरोक्सिन तथा एड्रीनल कोर्टेक्स के हार्मोन— ये सारे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ऊतक एवं कोशिकाओं के निर्माण में योगदान देते हैं।

वसा का चयापचय

जिस व्यक्ति को दिन भर अधिकांश बैठे रहना पड़ता है (अर्थात् जो अभ्रमणशील ही होते हैं), वैसे व्यक्ति के भोजन में यदि कैलोरी की मात्रा व्यक्ति की दैनिक आवश्यकता से अधिक होती है, तो उसके शरीर में वसा को संगृहीत करने की प्रक्रिया उसके लिए वरदान की अपेक्षा अभिशाप सिद्ध होती है। जब कभी वसा की मात्रा आवश्यकता से अधिक गृहीत होती है, तब शरीर में विशिष्ट स्थानों पर उसको अमानत के रूप में जमा कर दिया जाता है। अतिरिक्त मात्रा में गृहीत कार्बोज तथा प्रोटीन को भी वसा में परिवर्तित कर उसी प्रकार से अमानत के रूप में संगृहीत कर दिया जाता है। वसा के अपचय से प्रति ग्राम ९ कैलोरी ऊर्जा प्राप्त हो सकती है। भोजन के तुरन्त बाद रक्त में वसा की आनुपातिक मात्रा बढ़ जाती है। जब वसायुक्त रक्त वसामय ऊतक, हृदय की मांसपेशियों तथा कंकाली मांसपेशियों से गुजरता है, तब रक्त में विद्यमान वसा को ग्लिसरोल या फेटी एसिड्स के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। ग्लुकोज़ की तरह ग्लिसरोल का उपयोग अपचय-प्रक्रिया में किया जाता है। फेटी एसिड्स का जरूरत के अनुसार आक्सीकरण कर ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है तथा अवशिष्ट हिस्से को वसामय ऊतकों की वसा कोशिकाओं द्वारा संगृहीत किया जाता है। वसा भी ऊतकों एवं कोशिकाओं का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

यद्यपि शरीर के विभिन्न भागों में फैली हुई वसा की मात्रा बहुधा या स्थायी रूप से अपने-अपने स्थान में स्थिर एवं निष्क्रिय दिखाई देती है, पर वस्तुत: ऐसा नहीं है। वास्तव में वसा की कोशिकाएं काफी गतिशील एवं सक्रिय होती हैं। वे रक्त (प्लाज्मा) की वसा-कोशिकाओं के साथ निरन्तर विनिमय करती रहती हैं, अपचित होती हैं और पुन: संश्लिष्ट होती हैं। शरीर में संगृहीत वसा की कुल मात्रा का आधा हिस्सा प्रतिदिन बदल जाता हैं। बहुत ज्यादा स्थूल व्यक्तियों में भी वसा की पूरी संगृहीत राशि लगभग दो या तीन सप्ताह में परिवर्तित हो जाती है।

वसा के चयापचय की प्रक्रिया में हमारा यकृत बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यकृत कार्बोज में से संश्लेषण द्वारा फेटी एसिड्स का निर्माण करता है तथा विशिष्ट रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा उनकी विभिन्न परिणतियों को घटित करता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उपवास (या अनाहार) की अवस्था में अथवा मधुप्रमेह (डायबिटीज़) जैसी बीमारी में ऊर्जा-उत्पादन के लिए कार्बोज की मात्रा जब असाधारण रूप में कम हो जाती है, तब ऊर्जा के उत्पादन के लिए अधिक मात्रा में फेटी एसिड्स को काम में लिया जाता है। वसा के चयापचय की प्रक्रिया के दौरान कोलेस्टेरोल नामक महत्त्वपूर्ण पदार्थ प्राप्त होता है।

भोजन से प्राप्त कोलेस्टेरोल को सामान्यत: आंतों में से रक्त द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। किन्तु जब व्यक्ति के भोजन में कोलेस्टेरोल का अभाव होता है, तब शरीर द्वारा स्वत: ही उसका निर्माण कर लिया जाता है। यह पदार्थ पित्त-लवणों का एक अंग है। कोर्टीसन और प्रोजेस्टेरोन आदि अनेक हार्मोनों के निर्माण में यह काम में आता है। उपयोगी होते हुए भी मोटापे को निर्मित करने में इसके योगदान के विषय में मतभेद है।

फेटी एसिडों को कोशिकाओं के भीतर ले जाकर उन्हें सक्रिय कराने में इंसुलिन नामक हार्मोन प्रमुख नियामक की भूमिका अदा करता है। अन्यान्य हार्मोन जैसे—एपिनेफ्रीन, एड्रीनल-कोर्टेक्स के हार्मोन, विकास करने वाले हार्मोन, तथा थाइराइड के हार्मोन—वसा का अपचय बढ़ाते हैं। जब अनुकम्पी तन्त्रिकाएं सक्रिय होती हैं, तब वसामय ऊतकों में संगृहीत वसा का अपचय भी बढ़ जाता है। रक्त में रही हुई ग्लुकोज़ की मात्रा और फेटी एसिड्स परस्पर प्रतिलोम अनुपात में होते हैं अर्थात् जब ग्लुकोज़ की मात्रा बढ़ती है, तब फेटी एसिड्स की मात्रा घटती है और जब ग्लुकोज़ की मात्रा घटती है, तब फेटी एसिड्स की मात्रा बढ़ती है।

जलीय चयापचय

हम अपने शरीर में चयापचय द्वारा काफी मात्रा में जल का उत्पादन करते रहते हैं। ग्लुकोज़, प्रोटीन और वसा के आक्सीकरण की क्रिया के दौरान जल उत्पन्न होता है। प्रतिदिन शरीर में लगभग ३७५ मिलीलीटर जितना पानी हम उत्पन्न करते हैं, पर शारीरिक संतुलन-क्रिया को बनाए रखने के लिए इस मात्रा से १० गुनी अधिक जल की आवश्यकता शरीर को होती है। जल का उपयोग केवल पाचन आदि क्रिया के दौरान ही नहीं होता, अपितु मूत्र, मल, प्रस्वेद आदि के माध्यम से भी इसका व्यय होता रहता है। भोजन और पेय पदार्थों के द्वारा हम अपने दैनिक जलीय आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। अनेक ठोस भोज्य पदार्थों से भी काफी मात्रा में जल की प्राप्ति होती है।

ऊर्जा का चयापचय

हमारे शरीर में चलने वाली प्राय: सभी प्रक्रियाओं और प्रवृत्तियों को निरन्तर ऊर्जा की आवश्यकता रहती है। मानव-शरीर को शक्ति देने वाली

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ऊर्जा मूलत: "रासायनिक ऊर्जा" है। शरीर में होने वाली ऊर्जा के चयापचय की सारी प्रक्रिया अनेक अभिक्रियाओं की एक श्रृंखला के रूप में चलती है जो चूल्हे या अंगीठी में चलने वाली जलने की प्रक्रिया के सदृश होती है। दोनों प्रक्रियाओं में ईधन का आक्सीकरण (अर्थात आक्सीजन से रासायनिक संयोग) होता है। जिसके परिणामस्वरूप एक ओर ऊर्जा का उत्पादन होता है और दूसरी ओर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और जल का उत्पादन होता है। किन्तु उक्त दोनों प्रक्रियाओं में उल्लेखनीय विसदृशता भी है। अंगीठी में जलने की क्रिया बहुत ही त्वरित गति से होती है और ऊर्जा का उत्पादन ऊष्मा और प्रकाश के रूप में यकायक होता है, जबकि शरीर में ईंधन के जलने की प्रक्रिया मन्द गति से क्रमिक रूप से होती है। प्रत्येक बार में मुक्त होने वाली ऊर्जा का अधिकांश भाग पुन: रूपान्तरित कर संगृहीत कर लिया जाता है और आवश्यकतानुसार उसे काम में लिया जाता है। रासायनिक ऊर्जा का उपयोग शरीर की प्रवृत्तियों को चलाने में होता है। कभी उसका रूपान्तरण यान्त्रिक ऊर्जा के रूप में होता है (जैसे-भार उठाने आदि में), कभी विद्युत्-ऊर्जा के रूप में उसका रूपान्तरण किया जाता है (जैसे-तंत्रिका के आवेगों के प्रेषण में होता है,) कभी उसका उपयोग रासायनिक ऊर्जा के रूप में ही शरीर के जटिल रासायनिक पदार्थों के निर्माण के लिए किया जाता है। ऊर्जा जब मुक्त होती है, तब उसका अल्प अंश ऊष्मा के रूप में व्यय हो जाता है। वैसे तो अन्ततोगत्वा सभी रासायनिक ऊर्जा सीधे या घुमा फिरा कर ऊष्मा के रूप में परिवर्तित होती है, पर उष्मा का उत्पादन सर्वथा निरुपयोगी नहीं होता। शरीर में अत्यन्त आवश्यक रूप से घटित होने वाली क्रियाओं द्वारा उत्प्रेरित अभिक्रियाओं के लिए अपेक्षित शरीर-तापमान को बनाए रखने में यह (ऊष्मा) सहयोग करती है। किन्तु बहुत बार उष्णता का उत्पादन शरीर की आवश्यकता से अधिक हो जाता है, वैसी स्थिति में अतिरिक्त मात्रा से छुटकारा पाने के लिए विशिष्ट प्रकार की प्रविधियों का प्रावधान शरीर में है। यद्यपि आहार से प्राप्त ऊर्जा को सीधे ही ऊष्मा के रूप में काम नहीं लिया जाता, फिर भी उसका माप ऊष्मा के पारम्परिक मात्रकों द्वारा लिया जाता है। शरीर-क्रिया विज्ञान में सामान्यत: प्रयुक्त मात्रक को केलोरी (Calorie) कहा जाता है।[१]

१. देखें पृष्ठ २१ पर टिप्पण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

६
स्वास्थ्य के शत्रु

आधुनिक जीवन-प्रणाली ने मानव-जाति को सुख-सुविधाओं के साथ कुछ ऐसे अभिशाप भी अर्पित किये हैं,जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक बन गए हैं। मोटर-कार और ट्रकों से निकलने वाला धुंआ तथा तैलों और रासायनिकों से उद्भूत वायु-वाष्प प्रतिदिन हमारे स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करती है, यात्राओं में होने वाली गति ने, जो शब्द की गति से भी अधिक तीव्र हो चुकी है, जीवन की गति को भी तेज कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में अनुकम्पी स्नायु संस्थान लगातार हावी रहता है, अत्यधिक तनाव बना रहता है(जिसके कारण लगातार रक्तचाप बढ़ा हुआ रहता है) और हृदय-रोग जैसी बीमारियां भी बढ़ती जा रही हैं। दूसरी ओर समाज का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो निरन्तर बैठकवाली दिनचर्या के कारण शारीरिक निष्क्रियता से उद्भूत हानियों का शिकार बनता है। घरों में महिलाएं जिन शारीरिक श्रम के कार्यों में संलग्न रहती थीं, यन्त्रीकरण ने उनके पास से वे श्रम के साधन छीन लिए हैं, जिसके परिणामस्वरूप यद्यपि महिलाएं कड़े परिश्रम से बच जाती हैं, लेकिन साथ ही वे शारीरिक श्रम से होने वाले लाभों से वंचित रह जाती हैं, जो शरीर को स्फूर्तिमान,सुन्दर और स्वस्थ बनाए रखता था। इसी का अनिष्टकारक परिणाम है—मुटापा और मधुप्रमेह (डायाबिटीज़ मेलीटस) या चीनी की बीमारी। इन दो रोगों ने उन्हें परावलम्बी बना दिया है।

कुछ हमारी सामाजिक परम्पराएं स्वास्थ्य-शत्रुओं को सहज रूप से बढ़ावा दे देती हैं—जैसे, अतिथि-सत्कार के लिए आम रूप से चाय, काफी, बिस्कुट, शराब और सिगरेट आदि के लिए मनुहार। आधुनिक परिधानों के कारण भी जो शारीरिक स्थिति बनती है वह हानिकारक सिद्ध हो रही है। ऊंची एड़ी वाले जूते, तंग कपड़े आदि फेशनपरस्ती के अलावा कुछ नहीं हैं। बैठने-सोने के लिए कड़े तख्त आदि के स्थान पर गद्देदार-फोम वाले बिछौने के उपयोग से मेरुदण्ड आवश्यक विश्राम से वंचित रह जाता है। इसका परिणाम है—पीठ का दर्द, मेरु-मणि-स्खलन (slip-disc)आदि।

योगासन आदि के नियमित अभ्यास के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले कुछ एक दुष्प्रभावों को दूर किया जा सकता है। कायोत्सर्ग का अभ्यास तनाव और अन्य मानसिक स्वास्थ्य के शत्रुओं को निस्स्त करने में रामबाण है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रदूषण

इन दिनों बड़े शहरों में धूम्र-कोहरा प्रतिदिन की एक अपरिहार्य समस्या बन गई है। कल-कारखाने और मोटर आदि वाहनों के धुंए वातावरण को प्रतिक्षण प्रदूषित करते रहते हैं। इन प्रदूषकों में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, गंधक, नाइट्रोजन और सीसे के विषैले ऑक्साइड तथा फ्लोरिन के सांयोगिक भी होते हैं। मौसम की परिस्थितियों के कारण ये सारे प्रदूषक भूतल के समीप एकत्रित होकर गाढ़ हो जाते हैं। इसी का परिणाम है-धूम्र-कोहरा। आधुनिक नगरवासियों के फेफड़े इन प्रदूषकों के घातक प्रभावों से प्रति दिन-रात की प्रत्येक क्षण क्षीण और निर्बल होते रहते हैं। इनके द्वारा श्वसन-तन्त्र की बीमारियां पैदा होती हैं, जैसे-दमा, क्षय (राजयक्ष्मा), वातस्फीति (emphysema)। शिशुवय और वृद्धावस्था वाले इन बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। कार्बन-मोनोक्साइड तब पैदा होता है जबकि अग्नि-जलन की क्रिया पूर्ण नहीं होती है। वातावरण में इसका अस्तित्व उस धुंए के कारण होता है जो कि मोटर आदि वाहनों या कल-कारखानों की चिमनियों से निकलता है। रंगविहीन और गंधविहीन होने से इसका अस्तित्व दुर्ग्राह्य है। किन्तु यह अत्यन्त घातक और खतरनाक विष है। रक्त में रहे हुए हेमोग्लोबीन के साथ रासायनिक संयोग करने की शक्ति ऑक्सीजन की तुलना में अनेक गुनी होती है, जिससे यह फेफड़ों में हवा के साथ पहुंचती है, तब ऑक्सीजन के स्थान पर हेमोग्लोबीन के साथ पहले मिल जाती है तथा रक्त द्वारा शरीर की कोशिकाओं तक पहुंच जाती है। यह सम्बन्ध इतना गहरा और गाढ़ा होता है कि उसे बदला नहीं जा सकता। इसका परिणाम यह आता है कि वे हेमोग्लोबीन के कण जो मूलत: ऑक्सीजन के संवाहक के रूप में शरीर में काम आने वाले थे वे सदा के लिए उस क्षमता से वंचित कर दिए जाते हैं। कार्बन-मोनोक्साइड विष से अभिभूत व्यक्तियों को इस दुर्घटना का पता भी नहीं चल पाता है। धीरे-धीरे वे ऑक्सीजन की अल्पता के शिकार बन जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि कभी-कभी वातावरण में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की बहुलता के कारण ड्राइवर को कार चलाने में आवश्यक सावधानी प्रभावित होती है जिससे दुर्घटना की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

जल का प्रदूषण

जल का प्रदूषण दूसरे प्रकार का प्रदूषण है। औद्योगिक कूड़े-कर्कट या अवशिष्ट पदार्थों में विद्यमान क्षार, रासायनिक मिश्रण आदि हानिकारक पदार्थ जल के प्रदूषण का प्रमुख कारण हैं। प्राणियों के मल आदि अपशिष्ट पदार्थ,रासायनिक प्रक्षालक (साबुन आदि) तथा अन्य रासायनिक पदार्थों को नालियों के माध्यम से नदी आदि तक पहुंचाने में सामान्य जनता भी निमित्त

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

बनती है। ये सारे अपशिष्ट पदार्थ जल्दी से नष्ट नहीं हो जाते और अन्ततोगत्वा किसी-न-किसी प्रकार (जल आदि के माध्यम से) मनुष्य के खाद्य-पदार्थ में प्रविष्टि पा लेते हैं।

कोलाहल का प्रदूषण

कोलाहल का प्रदूषण भी एक प्रकार का प्रदूषण है। जहां लंबे समय तक मनुष्य तीव्र कोलाहलमय वातावरण में रहते हैं, वहां इसके दुष्प्रभाव से शारीरिक और मानसिक दृष्टि से हानिकारक परिणाम आते हैं। डिस्को, रोक-एन-रोल आदि कान फाड़ने वाले कोलाहलमय संगीत में रस लेने वाले शायद इस बात से अनभिज्ञ हैं कि वे भयंकर खतरे मोल ले रहे हैं। जब हमारी श्रवणेन्द्रिय उच्च ध्वनि के द्वारा प्रभावित होती हैं, तब उसके द्वारा शरीर में एक प्रकार का तनाव पैदा करने वाले एड्रीनल ग्रन्थियों के स्रावों को उत्तेजना मिलती है, जिससे रक्त-चाप, हृदय की गति व अन्य शारीरिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं। ऐसा ज्ञात हुआ है कि कभी-कभी तो इसके परिणामस्वरूप रक्त-वाहिनियों का स्थायी संकुचन हो जाता है।

मद्यपान और धूम्रपान

हमारा शरीर जीवन-विकास में सहायक होने वाली एक मशीन है। उसका दुरुपयोग न करना तथा उसे स्वस्थ बनाए रखना ही समझदारी है। यह एक सामान्य विवेक की बात है, किन्तु मनुष्य इस ओर विशेष ध्यान नहीं देता। वह निरन्तर मृत्यु से डरता तो है, पर प्रत्येक संभाव्य रीति से वह अपने आपको त्वरता के साथ मृत्यु के नजदीक ले जा रहा है। अज्ञान, निष्क्रियता, तनाव तथा खतरनाक बुरी आदतों के द्वारा हजारों तरीकों से मनुष्य अपने शरीर का दुरुपयोग करता है। ये तरीके हमने अपनी जीवन-पद्धति में अपना रखे हैं। उदाहरणतः आज़ मद्यपान और धूम्रपान मनुष्य-सभ्यता के अंग बन चुके हैं।

सामाजिक उत्सव आदि में आजकल मद्यपान और धूम्रपान के लिए लोगों को विवश किया जाता है तथा बहुत लोग इच्छा न होते हुए भी केवल मजाक के पात्र बनने के डर से इंकार नहीं करते।

मद्यपान आदि का सेवन करने वाले अधिकांश लोग चाह कर वैसा करते हैं और उससे आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु वे नहीं जानते कि मद्यपान-सेंवन उन्हें मानसिक परावलम्बिता तथा दुर्व्यसन की ओर तेजी से धकेल रहा है।

नशे की आदत वालों को क्रमशः अधिक से अधिक मात्रा में उसका सेवन करना पड़ता है। ऐसा करने से ही वे उसके द्वारा ईप्सित प्रभाव ला सकते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि लगभग १० प्रतिशत मद्य पीने वालों के लिए मद्यपान स्वयं एक समस्या बन जाती है। स्वास्थ्य-समस्याओं

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में हृदय-रोग और कैंसर के बाद तीसरा स्थान शराब के दुर्व्यसन का है। स्मरण रहे कि यकृत शरीर में प्रविष्ट विषों को निकालने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। मदात्यय से शरीर की कोशिकाएं असामान्य रूप से विषाक्त बन जाती हैं, जिन्हें निर्विष बनाने के लिए यकृत को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। इस प्रकार मदात्यय से मस्तिष्क और यकृत को अपूर्णीय क्षति होती है।

कार दुर्घटनाओं में अधिकांश का निमित्त मद्यपान पाया जाता है। ड्राईवर के द्वारा कार चलाने से पूर्व मद्य के सेवन के कारण उसके मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव पड़ता है जिससे वह सही ढंग से समन्वयन, निर्णायकता और प्रतिवर्त क्रिया करने से अक्षम हो जाता है।

धूम्रपान

प्रत्येक सिगरेट के डिब्बे पर तथा विज्ञापन में यह कानूनी चेतावनी दी जाती है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। धूम्रपान से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे-वातस्फीति (एम्फीज़ीमा) हृदय-रोग, चिरकालिक खांसी आदि। इन दिनों में जनता के ध्यान को आकर्षित करने वाला धूम्रपान का सबसे बड़ा दुष्परिणाम है—फेफड़ों का कैन्सर। यह एक असाध्य और बहुधा घातक बीमारी है। यह बीमारी नहीं पीने वालों की अपेक्षा पीने वालों में २० गुणा अधिक व्याप्त है। कैन्सर की बीमारी में विषाक्त कोशिकाएं वृद्धिगत होती हुई स्वस्थ कोशिकाओं को नष्ट कर देती हैं और अन्ततोगत्वा ऊतकों को भी। एम्फीज़ीमा (वातस्फीति) की बीमारी में श्वास-प्रकोष्ठों (अल्वीओली) का रोगात्मक विस्तार होता है। बहुत सारी श्वसनिकाएं एक साथ अवरुद्ध हो जाती हैं। श्वास-प्रकोष्ठों की दीवारें पतली होकर क्षीण हो जाती हैं, जिससे श्वसन तन्त्र की समग्र उपयोगी सतह के क्षेत्रफल में भारी गिरावट आ जाती है। ये सारी परिस्थितियां अपुनरावर्तनीय है। अन्ततोगत्वा ऑक्सीजन की कमी तथा कार्बन-डाइ-आक्साइड की वृद्धि निरन्तर बनी रहती है, जिससे मृत्यु तक हो सकती है।

सिगरेट का धुंआ श्वास-नलिका के अस्तर में रहे हुए सूक्ष्म बालों (रोमों) को आघात पहुंचा कर संवेदन-शून्य कर देता है, जिससे वे धूलिकण-युक्त श्लेष्म को ऊपर धकेलने में अक्षम हो जाते हैं तथा उसे स्वरयंत्र द्वारा बाहर निकालने की क्रिया बन्द हो जाती है। यदि धूम्रपान की आदत वाले व्यक्ति धूम्रपान छोड़ दें तो कुछ महिनों में ये बाल साफ-सूफी के कार्य के लिए पुनः सक्रिय बन सकते हैं।

अब धूम्रपान न केवल फेफड़ों के कैन्सर का प्रमुख कारण माना जाता है अपितु स्वरयंत्र, मुख-गुहा तथा अन्न-नली के कैन्सर का भी प्रमुख कारण माना जाता है तथा साथ ही मूत्राशय, अग्न्याशय (क्लोमग्रन्थि) और गुर्दे के

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

केन्सर में भी सहयोगी कारण बनता है।[१]

नशीले पदार्थों का सेवन

तनाव-मुक्ति, उत्तेजना या सुखाभास की तीव्रानुभूति (या मस्ती) के लिए नाना प्रकार के नशीले पदार्थों का नित्य सेवन करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। दुर्भाग्य की बात है कि अब तक जितने नशीले औषध आविष्कृत हुए हैं, वे किसी-न-किसी रूप में खतरनाक सिद्ध हुए हैं। अधिकांश ऐसे पदार्थों से व्यक्ति उनका व्यसनी बन जाता है, यानी कुछ दिनों के सेवन के बाद उनके शरीर का चयापचय-क्रम परिवर्तित हो जाता है और व्यसनी को उन पदार्थों के निरन्तर सेवन पर आश्रित होना पड़ता है। यद्यपि उनका उपभोग अचानक बन्द कर दिया जाय, तो व्यसनी को काफी पीड़ा सहन करनी पड़ती है और कभी-कभी तो मृत्यु भी हो सकती है। यह पराश्रितता शारीरिक न भी हो, पर मानसिक रूप में अवश्य हो जाती है, जो नशीले पदार्थ को 'वैशाखी' का रूप देकर मनुष्य को पंगु बना देती है। बहुत सारे नशीले पदार्थ यकृत और मस्तिष्क जैसे प्राणाधार अवयवों को भारी क्षति पहुंचाते हैं।

अफीम और माफिया जैसे स्वापक पदार्थ केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान के शासक होने के कारण पीड़ा आदि में राहत पहुंचाते हैं या चिंता की अनुभूति से व्यक्ति को मुक्त करते हैं। इससे सुखाभास या भ्रम भी पैदा होता है किन्तु ये तीव्र दुर्व्यसन हैं और सदियों से गम्भीर स्वास्थ्य-समस्याओं के उत्पादक रहे हैं। इन व्यसनों के शिकार व्यक्ति अपनी लत पूरी करने के लिए अपराध करने पर उतारू हो जाते हैं।

उत्तेजक पदार्थ

चाय, काफी, कोको अन्य पेय पदार्थ में विद्यमान केफीन और सिगरेट आदि तम्बाकू वाले पदार्थों में विद्यमान निकोटीन सामान्यतः प्रयुक्त उत्तेजक पदार्थ हैं। इन दोनों में (केफीन और निकोटीन में) केन्द्रीय नाड़ी तंत्र को उत्तेजित करने की अद्‌भुत क्षमता है। किन्तु दूसरी ओर ये ही तत्व हृदय-रोग को बढ़ाने

---

१. आधार : टाइम पत्रिका, मार्च १९८२; इसी पत्रिका में अमरीका के सर्जन जनरल सी. एवरेट कूप की इसी विषय की एक रिपोर्ट भी प्रकाशित है। इस रिपोर्ट में वे कहते है—हमारे युग की सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या धूम्रपान की है। उसकी रोकथाम भी की जा सकती है, फिर भी हमारे समाज में मृत्यु का सबसे प्रमुख कारण धूम्रपान है।

इस रिपोर्ट में आगे धूम्रपान न करने वालों को भी एक चेतावनी दी गई है कि उनको सिगरेट के धुएं से भरे कमरों में जाने से बचना चाहिए क्योंकि कैंसरोत्पादक तत्त्व धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के द्वारा कस लेने में जितनी मात्रा में भीतर जाते हैं उसकी अपेक्षा सुलगती सिगरेट से निकलते धुएं में अधिक मात्रा में विद्यमान होते है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में सहयोगी बनते हैं। अधिक मात्रा में केफीन का सेवन चिड़चिड़ापन तथा अनिद्रा की बीमारी को पैदा करता है। निकोटीन की अतिमात्रा फुफ्फुस से संबंधित कैंसर आदि अनेक रोगों को जन्म देने के लिए कुख्यात है। शारीरिक दृष्टि से इनका व्यसन-स्वभाव विवादास्पद हो सकता है; किन्तु मानसिक दृष्टि से इनकी परावलम्बिता असंदिग्ध है।

भांग, गांजा, सुल्फा, एल.एस.डी. आदि जिन्हें "साईकेडेलिक औषध" कहते हैं, शरीर में से प्राकृतिक रूप में स्रावित "नोरएपिनेफ्रीन" नामक उत्तेजक के स्राव में वृद्धि करके अपना प्रभाव डालते हैं। इनके सेवन करने वालों में कभी-कभी उत्तेजना इतनी अधिक हो जाती है कि व्यक्ति नींद नहीं ले सकता। सुखाभास जैसी स्थिति और गहरी निराशा की स्थितियां एक के बाद एक होती रहती हैं। इन पदार्थों का दीर्घकालीन सेवन व्यक्ति को भ्रम या भ्रांति या उग्र व्यवहार तक पहुंचाता है। एल.एस.डी. का अणु रासायनिक दृष्टि से सेरोटोनीन नामक तंत्रिका-संचारी (न्यूरो-ट्रान्समीटर) के साथ अद्‌भुत सादृश्य रखता है, जिससे वह मस्तिष्कीय कोशिकाओं के कार्यकलापों में विक्षेप पैदा करता है। इससे पैदा होने वाले भ्रम अति आह्लादक या अति भयानक स्वप्न जैसे होते हैं। जब व्यक्ति नशे की स्थिति में होता है, तब उसकी विवेक-शक्ति विकृत हो जाती है, जो उसके स्वयं के लिए तथा अन्य लोगों के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकती है। अमेरिका की 'नेशनल ऐकेडमी ऑफ साईन्स' के 'इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिसिन' नामक संस्थान ने गांजा के प्रभाव पर अपनी विस्तृत रिपोर्ट (लगभग १०० पृष्ठों की) के निष्कर्ष में बताया है—गांजे में विद्यमान मुख्य सक्रिय तत्त्व "डेल्टा-टेट्राहाइड्रोकेनाबीनोल" (टी.एच.सी.) शराब की तरह क्रियावाही तंतुओं के पारस्परिक तालमेल को छिन्न-भिन्न कर डालता है।

इससे गतिमान् पदार्थों के हिलने-डुलने को समझने की क्षमता भी प्रभावित होती है। ऐसा व्यक्ति प्रकाश की चमक को पकड़ने में असफल हो जाता है। चूंकि ये सारी क्रियाएँ सुरक्षित रूप से वाहन को हांकने के लिए आवश्यक होती हैं, इन क्रियाओं में पैदा होने वाली गड़बड़ी का अर्थ होता है—भारी खतरा मोल लेना। इन पदार्थों का सेवन स्वल्पकालीन स्मृति को क्षीण करता है, अवबोध-शक्ति को मन्द तथा निर्णायक शक्ति में विपर्यय करता है, व्यक्ति के मस्तिष्क में आतंक और किंकर्त्तव्यमूढ़ता की प्रतिक्रियाएं पैदा करता है। इन पदार्थों का अतिमात्रा में सेवन करने से श्वसन-पथ का कैंसर होने और फुफ्फुसों को गम्भीर रूप में क्षति पहुंचने की संभावना बनी रहती है।

आसन

हमारे बड़ों के द्वारा बार-बार 'सीधा खड़े रहो, झुको मत', आदि वाक्यों

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

के द्वारा टोका जाना संभवत: कुछ खीज पैदा कर सकता है, पर ये शिक्षाएं बहुत उपयोगी हैं।

बैठने, खड़े रहने आदि में सही आसन की आदत डालने को स्वास्थ्य की कुंजी कहा जा सकता है। हमारी दैनिक प्रवृत्तियों में अपेक्षित शारीरिक स्थितियों को बनाये रखने के लिए शरीर का आसन बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमारे शरीर को प्रतिक्षण गुरुत्वाकर्षण का प्रतिकार करना पड़ता है। हम जानते हैं कि सभी पदार्थों में एक बिन्दु होता है, जिसे 'गुरुत्व-केन्द्र' कहते हैं, जहां सारे पदार्थ का भार केन्द्रित हो गया हो, ऐसा लगता है। उसी प्रकार हमारे शरीर का गुरुत्व-केन्द्र भी होता है। यदि उसे ठीक तरह से आलंबन दिया जाता है, तो नीचे की ओर खींचने वाले गुरुत्व-बल का प्रतिकार आलम्बन द्वारा ऊपर की ओर खींचने वाले बल से होता है। पर यदि गुरुत्व-केन्द्र आगे-पीछे खिसक जाता है तो व्यक्ति लरज कर गिर जाता है। उदाहरणत: ऊंची एड़ी वाले जूते पहनने से शरीर का गुरुत्व-केन्द्र आगे की ओर खिसक जाता है। संतुलन को बनाए रखने के लिए व्यक्ति को शरीर के ऊपर के हिस्से को पीछे की तरफ झुकाना पड़ता है, इससे मेरुदण्ड की वक्रता बढ़ जाती है, जो हानिकारक है।

सही ढंग से खड़े रहने की विधि है—गर्दन और रीढ़ की हड्डी दोनों सीधी रेखा में रहनी चाहिए तथा सिर को संतुलित अवस्था में गर्दन पर टिका हुआ होना चाहिए। उदर का भाग थोड़ा-सा भीतर की ओर खींचा हुआ तथा छाती के भाग को पूरी तरह फूलने में कोई अवरोध न हो। कंधे आगे की ओर झुके हुए न हों और हाथ दोनों ओर मुक्त रूप से लटकते हुए हों। स्मरण रहे कि सही आसन फौजी ढंग से अकड़ कर "सावधान स्थिति" में खड़े रहना नहीं, अपितु "तनावमुक्त और मांसपेशियों को शिथिल अवस्था में रखकर खड़े रहना है।" इसी प्रकार सही ढंग से बैठने में भी गर्दन और रीढ़ की हड्डी सीधी रहेगी, अकड़न नहीं, किन्तु तनाव-रहित और शिथिल रहेगी। इससे भिन्न प्रकार से बैठने या खड़े रहने की आदत से पीठ का दर्द या शारीरिक आकार में विरूपता होने की संभावना है।

विश्राम या निद्रा लेने के लिए सामान्य: लेटने की स्थिति का उपयोग किया जाता है, किन्तु बहुत अधिक समय तक बिछौने में पड़े रहने से अनेक नुकसान हो सकते हैं।

डॉक्टर आर.एच. दस्तूर के अनुसार[1]—आधुनिक महिलाएं और पुरुष बैठने, सोने आदि के लिए नरम वस्तुओं का अत्यधिक उपयोग करते हैं। जैसे—मोटरकार की सीटों को अधिक आरामदायक बनाने के लिए अत्यधिक

१. टाइम्स ऑफ इण्डिया, २३ मई १९८२।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लचीली बनाई जाती है। दफ्तर आदि में रखे जाने वाली कुर्सियां मुलायम गद्देदार होती हैं। व्यक्ति का पद जितना ऊंचा होता है, उतना ही उसके लिए अधिक मुलायम और नरम आसन रखा जाता है। घरों में विश्राम के लिए गद्देदार सोफा या नरम रबड़ के तकिये आदि काम में लिये जाते है। सबसे अधिक खतरनाक अपराधी हैं—अत्यधिक लचीली तोशक, फोम या 'डनलोपिलो' आदि की लुभावनी शय्याएं जो रात भर हमें गाढ़ी निद्रा में सोने का आमंत्रण देती हैं और दिन भर पीठ के दर्द से पीड़ित होने के लिए बाध्य करती हैं। फिर दिन भर खड़े रहने या बैठने के गलत आसन थकी हुई मांसपेशियों पर और अधिक दबाव डालते है और पीठ की पीड़ा उत्पन्न करते हैं।

"मेरुदण्ड, मेरु-चकतियों के अस्थि-बंध, पीठ की मांसपेशियों तथा सन्धियों में होने वाले दर्द के कारण उत्पन्न पीठ का दर्द आजकल बहुत सामान्य हो गया है।"

"अधिकांश घटनाओं में मेरु-मणि या चकतियों में कोई खराबी नही होती है। वस्तुतः यह दर्द मांसपेशियों, कंडरा या अस्थि-बन्धों पर पड़ने वाले दबाव या उनमें पड़ने वाली मोच के कारण होता है। यह सारा गलत ढंग से बैठने या खड़े रहने या घंटों तक दफ्तरों में कुर्सी-टेबिल पर झुक कर बैठने या घंटों तक दावतों (पार्टियों) में खड़े रहने आदि से होता है। पीठ के नीचे के हिस्से में होने वाला दर्द मांसपेशियों के गलत उपयोग के विरोध में प्रगट होता है।"

इन सबसे बचने के लिए डॉ. दस्तूर ने निम्नलिखित परामर्श दिया है:

१. लकड़ी के तख्त के ऊपर पतली कड़ी शय्या का उपयोग किया जाए। फोम या रबड़ की मुलायम शय्या का उपयोग न करें।

२. खड़े रहने या बैठने में सही आसन रहे, जिसमें मेरुदण्ड और गर्दन सीधी रहे तथा उदर का हिस्सा भीतर की ओर खींचा हुआ रहे।

३. एक साथ लम्बे समय तक बैठे न रहें, बीच-बीच में खड़े हो जाएं और पैरों को पूरा तान लें।

४. एक ही स्थान पर लम्बे समय तक खड़े रहने से मेरुदण्ड पर अत्यधिक दबाव आता है। इससे मुक्त होने के लिए बारी-बारी से एक-एक पैर को विश्राम देते रहें।

५. तनाव से मुक्त होने के लिए शिथिलीकरण का अभ्यास करें।

६. घुटनों को सीधा रखकर जमीन पर से बहुत भारी सामान (जैसे—सूटकेस, पानी से भरी बाल्टी आदि) न उठाएं, घुटनों को मोड़कर उठाने से बचाव होगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

७
तनाव-मुक्ति

तनाव–युग

सारे विश्व में आज यह बात स्वीकृत है कि मानसिक तनाव आधुनिक जीवन-पद्धति का एक अभिन्न अंग बन चुका है। साधारण व्यक्ति के जीवन में समस्याओं की बाढ़-सी आ रही है। कहीं व्यक्ति आर्थिक ऋणों के बोझ से चिंतित है, तो कहीं आवश्यक उपभोग्य पदार्थों की कमी से। कहीं अपराध बढ़ रहे हैं तो कहीं बेकारी बढ़ी है। ये सारी आधुनिक चिंताएं न केवल व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं अपितु उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालती हैं। ये सारी स्थितियां "तनाव या दबाव की परिस्थितियां" हैं। कोई भी घटना या स्थिति जो व्यक्ति अपने सामान्य व्यवहार से टूटने के लिए बाधित करे, उसे "दबावपूर्ण परिस्थिति" कहा जाता है। जब कभी व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, उसके शरीर के भीतर एक स्वतः-संचालित आन्तरिक प्रणाली सक्रिय हो उठती है। इसके परिणामस्वरूप ऐसी आन्तरिक स्थिति बनती है जिससे व्यक्ति के स्वायत्त नाड़ी संस्थान की स्वस्थ दशा का आवश्यक संतुलन बिगड़ जाता है। ऐसी स्थिति में "अनुकम्पी नाड़ी-संस्थान" की प्रमुखता हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप कुछ शारीरिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं, जैसे रक्तचाप में वृद्धि, हृदय की धड़कन में वृद्धि, चयापचय-क्रिया में तेजी, श्वास की गति में तेजी तथा रक्त में विद्यमान शर्करा की मात्रा में वृद्धि। इन सभी को मनुष्य "तनाव" के रूप में अनुभव करता है।

"दबाव की परिस्थिति में सक्रिय होनेवाली प्रणाली", जिसे "दबाव-प्रणाली" कहा जाता है, का प्रारंभ एड्रीनल ग्रंथियों की स्राव-वृद्धि से होता है। एपिनेफ्रीन नाम स्राव का उत्पादन और स्रवण अनुकम्पी नाड़ी संस्थान को सक्रिय बनाता है। एड्रीनल ग्रन्थि का यह अतिस्राव ही वह कीमत है, जो आधुनिक मनुष्य को वर्तमान दबाव-मूलक समाज में चुकानी पड़ रही है। जब कभी दर्द, भय, क्रोध, उत्तेजना या तत्सदृश वेदनाकारक भाव पैदा होता है, एपिनेफ्रीन के स्राव में वृद्धि हो जाती है। आदिम युग में जब मनुष्य को वन्य जीवन यापन करना पड़ता था, बाहर की परिस्थितियों से यदा-कदा मुकाबला करने के लिए यह अतिस्राव काफी उपयोगी होता था। पर ऐसे अतिस्रावों का बार-बार घटित होना उनके स्रोतों को दुर्बल बनाना है। वर्तमान युग के मानव के सामने "मुकाबला करने या भागने की परिस्थिति आदिम मानव जितनी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

असभ्य नहीं है, पर शरीर पर उसका दुष्प्रभाव उतना ही हानिकारक है। आधुनिक मनुष्य के मानस में पैदा होने वाले ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा के भाव, घृणा और भय, सत्ता और संपत्ति के लिए संघर्ष, लालसाएं और बहम- इन सब मनोभावों का प्राबल्य और बार-बार घटित होना एड्रीनल ग्रन्थियों के अतिस्रावों की मांग करते हैं और अन्ततोगत्वा उन स्रोतों को थका देते हैं। दबाव-प्रणाली को निरन्तर उत्तेजना मिलती रहती है और आपात्कालीन या सुरक्षित ऊर्जा की मांग हर समय बनी रहती है। बहुत अधिक लम्बे समय तक लगातार दबाव की स्थिति रहने पर पहले ग्रन्थितंत्र गड़बड़ा जाता है और बाद में समूचा कार्य करना ही बंद कर देता है। एड्रीनल ग्रंथियां एपीनेफ्रीन नामक स्राव का स्रवण बन्द कर देती हैं। परिणाम-स्वरूप हृदय-गति मन्द हो जाती है, रक्त वाहिनियां शिथिल हो जाती हैं तथा मस्तिष्क को पहुंचने वाला रक्त बंद हो जाता है, जिससे बेहोशी आ जाती है। मूर्च्छा की सामान्य स्थिति बनी रहती है। ऐसी स्थित में बाहर से कृत्रिम रूप में यदि एड्रीनेलीन शरीर में नहीं पहुंचाया जाता जिससे कि भीतर सुप्त शक्ति को जाग्रत होने का अवसर प्राप्त हो सके, तो मृत्यु भी हो सकती है।

क्या बचने का उपाय है?

आधुनिक औषध विज्ञान द्वारा प्रदत्त प्रशामक (ट्रेन्क्वीलाइजर्स) गोलियां केवल अस्थायी आराम का आभास कराती हैं, पर लम्बे काल में गोलियां स्वयं बीमारी से भी अधिक खतरनाक बन जाती हैं। तब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या हमारी वर्तमान युगीन परिस्थितियां और वातावरण के कारण विनाश तक पहुंचना ही हमारे भाग्य में लिखा है या ऐसा कोई रास्ता भी है, जिसके माध्यम से हम अपने आपको कम से कम उस रूप में परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं जिससे कि इस दैनिक दबाव के हानिकारक प्रभावों से बच जायें?

सौभाग्यत: हमारे भीतर एक ऐसी सुरक्षात्मक प्रणाली है जिसे सक्रिय बनाने पर उस शारीरिक अवस्था का निर्माण किया जाता है जो "लड़ो या भागो" वाली प्रतिक्रिया से नितान्त उल्टी स्थिति का सृजन कर सकती है। नोबेल-पुरस्कार विजेता स्विट्जरलैंड के सुप्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिक डॉ.वाल्टर ने इस प्रणाली को "ट्रोपोट्रोफिक प्रतिक्रिया" की प्रणाली कहा है और उसे एक सुरक्षात्मक प्रणाली के रूप में निरुपित करते हुए बताया है कि अधिक दबाव से उत्पादित प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया प्रतिरोधी की क्रिया इसके द्वारा की जा सकती है।

डॉ.हर्बर्ट बेनशन, एम.डी., ने इसे "तनाव-मुक्ति की प्रक्रिया" कहा है। हम अपने आपको इस प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे सकते हैं और एड्रीनल के अतिरिक्त स्रावों की प्रक्रिया में अन्तर ला सकते हैं। इसके लिए "सम्पूर्ण तनावमुक्ति" (या शिथिलीकरण) का प्रयोग अभ्यास के स्तर पर अपेक्षित है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तनाव-मुक्ति क्या है ?

तनाव-मुक्ति की साधना (कायोत्सर्ग) तनाव को समाप्त करने का एकदम सीधा और निर्दोष तरीका है। तनाव-मुक्ति के बिना व्यक्ति न तो शांति प्राप्त कर सकता है, न स्वास्थ्य और न सुख, फिर चाहे व्यक्ति के पास सुखी होने के लिए कितने ही साधन क्यों न हो ? यदि कोई भी व्यक्ति इस साधना को सीख लेता है और प्रतिदिन आधा या पौन घण्टा नियमित उसका अभ्यास करता है, तो किसी भी परिस्थिति में तनाव-मुक्त रह सकता है।

कायोत्सर्ग की साधना का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें मांसपेशियों की कार्य-पद्धति की जानकारी होनी चाहिए। हमारी मांसपेशियां सम्बन्धित स्नायु को उत्तेजना मिलते ही विद्युत् वेग से संकुचित होती हैं। हमारी कंकाली माँसपेशियों के कारण से ही हम इच्छानुसार हलन-चलन कर सकते हैं। हलन-चलन की क्रिया को समझने के लिए मांसपेशियों को हम विद्युत-चुम्बक के साथ उपमित कर सकते हैं और जो स्नायु (या नाड़ी) उसे उत्तेजित करता है, वह उस विद्युत् के तार के समान है, जो उसको मस्तिष्क से जोड़ता है।

नींद के दौरान स्नायुओं में सामान्य रूप से विद्युत-प्रवाह बंद हो जाता है और विद्युत-चुम्बक प्रायः-प्रायः चुम्बकत्व-रहित हो जाता है। केवल कुछ सुरक्षा और जीवन टिकाने वाली क्रियाओं में प्रवृत्त मांसपेशियों को छोड़कर शेष सारी मांसपेशियां नींद में शिथिल हो जाती हैं।

जब कोई व्यक्ति विश्राम की मुद्रा में होता है, तब भी स्नायुओं में प्रवाहित होनेवाला विद्युत्-प्रवाह बहुत मन्द-सा होता है। इससे मांसपेशियों का चुम्बकीकरण भी मन्द होता है और इसलिए वे शांत-शिथिल स्थिति में पड़ी रहती हैं।

जब-जब व्यक्ति किसी भी शारीरिक (मानसिक या वाचिक) क्रिया में प्रवृत्त होता है, तब-तब मस्तिष्क के आदेशानुसार नाड़ियों में विद्युत्प्रवाह को तीव्र कर दिया जाता है जो विद्युत्-चुम्बकों को सक्रिय बना देता है। मांसपेशियां संकुचित होती हैं, हाथ मुड़ने लगते हैं और मुट्ठियां बन्द की जा सकती हैं। कितने सूक्ष्म क्रियात्मक स्नायुओं (मोटरनर्व्स) को गति देना है, इसका आधार किए जाने वाले प्रयत्न की तीव्रता पर है।

नींद, विश्राम और क्रियात्मक-इन तीनों स्थितियों में से व्यक्ति दिनभर में कितनी ही बार गुजरता रहता है। पर इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति और है, जो असामान्य होने पर भी कुछ व्यक्तियों के दैनिक जीवन में बार–बार घटित होती है और वह स्थिति है—अति तनाव की। निरन्तर कसे हुए जबड़े, तनी हुई भ्रकुटियां और आमाशय की मांसपेशियों का कड़ापन—ये

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इस प्रकार की स्थिति के कुछ प्रत्यक्ष चिन्ह हैं। इस स्थिति में हमारे शरीरस्थ विद्युत-चुम्बकों का तीव्र विद्युत्-प्रवाह के कारण अति-चुम्बकीकरण हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी मांसपेशियों के दल एक स्थायी संकुचन की स्थिति में बने रहते हैं,जो कि बहुत बार अनावश्यक होता है। इसके कारण हमारी स्नायविक और मांसपेशीय ऊर्जा का एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यर्थ चला जाता है क्योंकि इस स्थिति में विद्युत् का निरन्तर व्यय होता है। ऊर्जा का व्यय कितनी मात्रा में होगा, इस बात का आधार क्रियावाही मांसपेशियों की संख्या पर है, न कि उनकी लम्बाई-चौड़ाई पर या उनकी शक्ति पर। जैसे—चेहरे की एक छोटी-सी मांसपेशी को संकुचित करने में उतनी ही स्नायविक ऊर्जा व्यय होती है जितनी कि पैर की एक बड़ी मांशपेशी को सक्रिय करने में होती है। इस प्रकार ऊर्जा का होने वाला समग्र व्यय क्रियावाही तन्तुओं की संख्या और विद्युत्वाहकों की भीतर चलने वाले विद्युत्प्रवाह के सामर्थ्य—इन दोनों पर निर्भर है। दूसरी विशेष बात यह है कि जहां प्रति-दिन लाखों और करोड़ों की संख्या में निकम्मी और मृत कोशिकाओं का स्थान नई और स्वस्थ कोशिकाएं ले लेती हैं,वहां स्नायविक कोशिकाओं के पुरानी या मृत होने पर भी, उनका स्थान सदा ही स्थिर रहता है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की आयु बढ़ती है स्नायविक कोशिकाओं की संख्या निरन्तर घटती जाती है। यदि किसी भी कारण से हम उन्हें आहत कर देते हैं (उदाहरणार्थ- मानसिक दबाव के रूप में उनसे अधिक कार्य लेने पर ऐसा घटित होता है), तब हम उन्हें सदा-सदा के लिए गंवा देते हैं, जो अपने पीछे अपूरणीय क्षति छोड़ जाती हैं।

संकल्पपूर्वक यदि सम्पूर्ण शिथिलीकरण को जागरूकता के साथ साध लिया जाता है, जिसे कायोत्सर्ग कहा जाता है, तो हम उपर्युक्त प्रकार की थकान क्षति से बच सकते हैं। कायोत्सर्ग के द्वारा मांसपेशियों रूप विद्युत्-चुम्बकों के साथ उन्हें विद्युत् पहुंचाने वाले तारों (स्नायुओं) का सम्बन्ध नींद की अपेक्षा और अधिक क्षमतापूर्वक स्थगित किया जा सकता है। इससे विद्युत् के प्रवाह को करीब-करीब शून्य तक पहुंचा कर ऊर्जा को न्यूनतम बनाया जा सकता है।

कायोत्सर्ग में तनाव-मुक्ति

अनेक घंटों की अव्यवस्थित निद्रा की अपेक्षा आधा घंटा का सधा हुआ कायोत्सर्ग व्यक्ति के तनाव और थकान को अधिक भली-भांति दूर कर सकता है। कायोत्सर्ग की साधना हमारी सचेतन इच्छा-शक्ति के शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को व्यक्त करने वाली एक साधना है। हमारी यह इच्छा-शक्ति किसी आततायी तानाशाह की तरह हाथ में चाबुक लेकर अपनी शक्ति के बल पर दूसरों को चलाने वाली नहीं अपितु उस स्नेहमयी माता की तरह है जो ममता और धैर्य के द्वारा अपने जिद्दी बच्चे को ठीक करती है। दूसरे शब्दों में कहा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जा सकता है कि कायोत्सर्ग कभी भी बल-प्रयोग, तनातनी या हिंसक भावों से नहीं अपितु केवल विनम्र निवेदनमूलक स्वतः-सुझावों से ही सधता है।

कायोत्सर्ग तनाव-मुक्ति की एक ऐसी विधि है जिसे हम "हाइपोटोनिया" का एक सजा-संवरा रूप मान सकते हैं। दीर्घकालीन अभ्यास के बाद कायोत्सर्ग एक आदत बन जाता है और वह भी एक यांत्रिक रूप में नहीं अपितु सहज और जागरूक जीवन जीने के रूप में। यदि कोई व्यक्ति विकटतम परिस्थितियों में भी अपने आपको तनाव-मुक्त रख सकता है, तो समझ लेना चाहिए कि उसने अपनी चेतन संकल्प-शक्ति का शरीर पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है।

कायोत्सर्ग कैसे करें?

सामान्यतया कायोत्सर्ग लेटकर करने में सुविधा रहती है (वैसे बैठे-बैठे या खड़े-खड़े भी किया जा सकता है), पर लेटने से पूर्व उसके अनुरूप स्थितियां आवश्यक हैं- खड़े होकर उच्चारण पूर्वक संकल्प करें—"अपने शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त होना मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक है। तनाव-मुक्ति के लिए कायोत्सर्ग का अभ्यास करने के लिए मैं अपने आपको समर्पित करता हूं।" इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होकर अपनी सारी चिंताओं को एक बार विसर्जित कर दें। गहरा श्वास लें और पंजों पर खड़ा होकर हाथों को ऊपर की ओर तानते हुए पूरे शरीर को ऊपर की ओर खींचे। पूरे शरीर को ३-४ बार इस प्रकार तनाव दें और ढीला छोड़ें। इसी क्रिया को सीधा लेटकर फिर तीन-चार बार दोहराएं। कायोत्सर्ग एक अक्रिया का प्रयोग है। "अक्रिया" इसका मूल आधार है। इसलिए आप कुछ "करने" जा रहे हैं ऐसा न सोचें, अपने आपको बिल्कुल छोड़ दें। यह अत्यन्त आवश्यक है। अब आप कायोत्सर्ग करने के लिए बिलकुल तैयार हैं।

हमेशा कठिन सतह पर ही कायोत्सर्ग करें। बिछौने के लिए एक कम्बल के अतिरिक्त और कोई चीज का इस्तेमाल न करें। कम्बल के ऊपर सीधा लेटकर पैरों को फैलाकर एड़ियों के बीच थोड़ा-सा फासला (लगभग ८-१० इंच) रखें तथा हाथों को पार्श्व में रखें, हथेली को ऊपर की ओर खुला रखें। सिर को.बहुत ही सावधानी से भूमि पर रखा जाए ताकि गर्दन में कोई तनाव न हो। यदि सिर नीचे रखने में कठिनाई हो, तो प्रारम्भ में किसी चीज (तौलिया आदि) के सहारे गर्दन को टिकाया जा सकता है तथा कुछ दिन के बाद उसके बिना करने का अभ्यास किया जाए पर किसी प्रकार की असुविधा न हो, इसका ध्यान रखें।

चूंकि श्वास और शिथिलीकरण का गहरा सम्बन्ध है, इसलिए सबसे पहले श्वास पर ध्यान दें। यदि श्वास छिछला, तेज और बाधा उत्पन्न करने वाला हो या उसका क्रम, लयबद्ध न हो (अनियमित हो), तो उसे स्वतः-सूचन के द्वारा नियमित और लयबद्ध करें तथा मन्द और शान्त बनाएं। गहरा न भी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हो, तो भी चल सकता है। श्वास के साथ उदर का हिस्सा धीरे-धीरे स्वतः फूले और सिकुड़े। श्वास को नियमित करने के बाद उस पर ध्यान न दें और अब कायोत्सर्ग को क्रमिक रूप से साधें। शरीर की एक-एक मांसपेशी को पैर के अंगूठे से सिर तक क्रमशः शिथिल करें। शरीर अपने आपमें स्थिर रहे (केवल उदर की गति को छोड़कर)। अपने चित्त (चेतन इच्छा शक्ति) को शरीर के एक-एक भाग पर ले जाएं और बहुत ही शांति के साथ प्रत्येक भाग को शिथिल होने के लिए समझाएं।

दाएं पैर के अंगूठे से प्रारम्भ कर छोटे-छोटे चरणों में प्रत्येक अवयव पर एक के बाद एक ध्यान देते हुए बढ़ें। अंगूठे के बाद अंगुलियां, पंजा, तलवा, एड़ी और टखने की शिथिलता को साधें। टखने से पिण्डली और पिण्डली से घुटने तक के भाग को लें और फिर साथल और कटि तक के भाग को शिथिल करें। फिर उसी प्रकार बाएं पैर को शिथिल करें। फिर कटि के ऊपर पेड़ू, नाभि, उदर का पूरा भाग तथा भीतर के अवयय-गुर्दे, आंतें, प्लीहा, यकृत, क्लोम ग्रन्थि, आमाशय तथा छाती का भाग एवं अवयव—हृदय, फेंफड़े,पंसली आदि, पीठ का पूरा भाग, कंधे, दोनों हाथ और गर्दन को शिथिल करें। अन्त में कण्ठ से लेकर सिर तक—कण्ठ, ठुड्डी, होठ, मुंह के भीतर दांत, मसूढ़े, जीभ, तालू, कपोल, नाक, कान, कनपट्टी, आंखें, ललाट और सिर—प्रत्येक हिस्से की शिथिलता का अनुभव करें।

शरीर के नीचे के हिस्से की अपेक्षा चेहरे की मांसपेशियों का शिथिलीकरण कुछ कठिन महसूस हो सकता है, फिर भी निष्ठा और धैर्य के साथ अभ्यास करने से सफलता मिल जाती है। मुंह के भीतर दांतों को खुला तथा जीभ को अधर में रखा जाए। आंखों को कोमलता से बंद रखें। एक बार पैर से सिर तक यात्रा के बाद पुनः सारी प्रक्रिया को दोहराएं। दूसरी बार में समय शायद कम लगेगा और उसके बाद यदि आवश्यकता लगे तो तीसरी बार भी दोहराई जा सकती है। यह याद रखें कि, स्वतः-सूचन के बाद प्रत्येक भाग में शिथिलता का अनुभव करना है।

अगला क्रम है—शिथिलता की स्थिति को पहचानना। शरीर को बिलकुल स्थिर रखते हुए सबसे पहले गुरुत्व-संवेदन की अनुभूति करें। गुरुत्व-संवेदन के विरोध में लड़ने की चेष्टा न करें। उसे आपके धड़ और पैरों पर अपना प्रभाव डालने दें, जिससे वे भारी बनेंगे। अपने कन्धों को भीतर धंसने दें। जब सारा शरीर शिथिल हो जाएगा तब आपको तनाव-मुक्त स्थिति का तीव्र अनुभव होगा जो कि एक स्वतः-सूचन के रूप में न होकर वास्तविक अनुभूति होगी। एक बार यह स्थिति प्राप्त होगी, तब फिर शरीर छूट जाएगा और चेतना का उससे पृथक् अस्तित्व अनुभव करेंगे।

जब कायोत्सर्ग का प्रयोग सम्पन्न होता है तो सभी मांसपेशियों और नाड़ियों को पुनः सक्रिय होने का निर्देश दिया जाता है। इसके लिए शरीर के

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रत्येक भाग पर चित्त को एकाग्र कर लय-बद्ध दीर्घश्वास का प्रयोग कर उन्हें सक्रिय अनुभव किया जाता है। इस प्रकार की अनुभूति के पीछे शरीर-विज्ञान की दृष्टि से कौन-सी प्रक्रिया कार्य करती है। जैसे—हम पहले बता चुके हैं, जिस समय मांसपेशियों को शिथिल किया जा रहा था, उस समय उनसे सम्बद्ध क्रियावाही नाड़ियों में धीरे-धीरे विद्युत् का प्रवाह मन्द होता जा रहा था तथा इस प्रकार उन्हें विश्राम का अवसर दिया जा रहा था। अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण क्रियावाही प्रणाली को निष्क्रिय बना कर उसे विश्राम की अवस्था में स्थापित किया गया और फिर उसी का अनुकरण उसकी ही पूरक प्रणाली-संवेदी (ज्ञानवाही) प्रणाली द्वारा किया गया है जो मस्तिष्क (या केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान) तक संवेदनों को पहुंचाने का कार्य करती है। इस प्रकार, सारी प्रक्रिया के दौरान जहां एक ओर चेतन मन पूर्णतः जाग्रत और सजग था, वहां दूसरी ओर शरीर—हमारा भौतिक हिस्सा—धीरे-धीरे चेतना-रहित सा होता जा रहा था। इससे अभौतिक चैतन्य को उसके प्रतिपक्षी भौतिक हिस्से से मुक्त अनुभव करने का अवसर मिला। इस प्रकार के कायोत्सर्ग में स्वयं के शरीर से बाहर अपने आपको तैरते हुए अनुभव किया जा सकता है, जो निश्चित रूप से न तो स्वतः-सूचन का रूप है और न ही सम्मोहन है, अपितु एक वास्तविक तथ्य की सही-सही अनुभूति है।

शरीर पर प्रभाव

शरीर पर कायोत्सर्ग के प्रभाव की चर्चा करें तो कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग के द्वारा लगभग सभी नाड़ी-तन्त्रीय कोशिकाएं प्राणा शक्ति से अनुप्राणित हो जाती हैं। एक प्रकार से उन्हें अवकाश का समय प्राप्त होता है जिस दौरान वे निरन्तर उन पर पड़ने वाले बोझ से मुक्त रहती हैं—रात-दिन मस्तिष्क तक संवेदनों को पहुंचाने तथा प्रवृत्ति-बहुल गतिविधियों को चलाने के थका देने वाले कार्य से विश्रान्ति का अनुभव कर सकती हैं। इसलिए यह आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि दीर्घकालीन अशान्त निद्रा की अपेक्षा स्वल्पकालीन कायोत्सर्ग व्यक्ति को अधिक स्फूर्ति प्रदान करता है।

ऊपर जो बताया गया, उससे यह तो स्पष्ट हो चुका होगा कि कायोत्सर्ग का प्रयोग करते समय नींद लेना प्रयोग के लक्ष्य के विपरीत होगा। पर नींद में जाने से पूर्व कायोत्सर्ग का प्रयोग करने का परिणाम होगा—स्वस्थ शान्तिपूर्ण नींद।

शारीरिक कायोत्सर्ग मानसिक और भावनात्मक कायोत्सर्ग की भूमिका बनाता है।

स्वर-यंत्र का कायोत्सर्ग—मौन

क्या आप यह मान सकते हैं कि एक सार्वजनिक भाषणकर्ता को अपनी मांसपेशियों से कड़ी मेहनत करने वाले एक श्रमिक की अपेक्षा अधिक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नाड़ी-तन्त्रीय ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है ? पर वस्तुत: ऐसा होता है । उसका कारण यह है कि नाड़ी-तन्त्रीय ऊर्जा का व्यय उसे करने के लिए प्रयुक्त मांसपेशियों के परिमाण पर आधारित न होकर क्रिया-इकाई (मोटर-यूनिट) [१] की संख्या के अनुपात में होता है । जितना स्नायविक बल एक बड़ी मांसपेशी वाले अवयव (जैसे पैर) को संचालित करने में लगता है, उतना या उससे भी अधिक बल एक छोटी मांसपेशी वाले अवयव (जैसे चेहरे) को संकुचित-विकुचित करने के लिए लग सकता है । इस प्रकार एक वक्ता जो अपने स्वर-यन्त्र की अनेक छोटी-छोटी मांसपेशियों का उपयोग करता है, एक श्रमिक की तुलना में बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करता है या एक स्टेनो-टाइपिस्ट लुहार की अपेक्षा अधिक ऊर्जा खर्च करता है । इस दृष्टि से ऊर्जा के अपव्यय को रोकने तथा उसे संगृहीत करने में मौन एक बहुत ही मूल्यवान् माध्यम है ।

जब आप बोलते हैं तो क्या होता है ? आपके मस्तिष्क में जो चिन्तन निर्मित होता है,उसे वाणी द्वारा व्यक्त करने के लिए पहले उसे व्याकरण और भाषा के नियमानुसार वाक्य में परिवर्तित किया जाता है । उसके बाद इसे स्वर-यन्त्र की मांसपेशियों की सक्रियता द्वारा ध्वनि के रूप में परिणत किया जाता है । इस कार्य के लिए स्वर-यन्त्र की मांसपेशियों को आवश्यकतानुसार संकुचन-विकुचन करने के सही-सही निर्देश दिए जाते हैं और ध्वनि-तरंगों को प्रसारित करने के लिए आवश्यक हवा की मात्रा का नियन्त्रण किया जाता है । इसके अतिरिक्त जिव्हा, होठ और चेहरे की मांसपेशियों को भी समान निर्देश दिए जाते हैं । इन सब क्रियाओं के लिए अनेक छोटी-छोटी मांसपेशियों को काम में लिया जाता है और इन मांसपेशियों को सक्रिय करने के लिए हजारों की संख्या में क्रियावाही नाड़ियों के माध्यम से विद्युत् आवेग का उपयोग होता है, जिसके लिए एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा का प्रयोग आवश्यक है । स्थिति तो यह है कि यदि एक व्यक्ति को कुछ घंटों तक भाषण देना पड़े तो सम्भवत: उसे इतनी अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ेगी कि व्यक्ति अत्यधिक थक जाएगा । इस प्रकार मौन की साधना से व्यक्ति बहुत बड़े ऊर्जा-व्यय से बच सकता है ।

केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम व्यक्त रूप से बोलना बन्द करें । वास्तविक मौन का अर्थ तो यह है कि हम मानसिक रूप से भी बोलने की प्रक्रिया को बन्द करें, क्योंकि जहां तक स्नायविक ऊर्जा-व्यय का सम्बन्ध है, इसमें और व्यक्त वाणी में समान व्यय ही होता है । ऐसा इसलिए होता है कि मानसिक रूप से बोलने में केवल स्वर-यन्त्र को छोड़ कर उन सभी क्रियावाही मोटर-यूनिटों का उपयोग होता है जिनका उपयोग व्यक्त वाणी में होता है । इसलिए व्यक्त वाणी-संयम के साथ मानसिक संयम का प्रयोग भी आवश्यक है ।

---

१. एक मोटर–यूनिट मांसपेशी तथा उसको सक्रिय बनाने वाली नाड़ियों के ऊतकों का संयुक्त रूप है ।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

८
भावनात्मक स्वास्थ्य है स्वास्थ्य की कुंजी

हमारा भावना–तंत्र

अब यह भली-भांति सिद्ध हो चुका है कि पाचन-तंत्रीय अंगों में व्रण (अलसर), अनिद्रा, तेज धड़कन, एंठन, दमा आदि बीमारियों के लक्षणों की उत्पत्ति भौतिक निमित्तों की अपेक्षा भावनात्मक निमित्तों से अधिक संभावित है। मानसिक या भावनात्मक असंतुलन से निष्पन्न शारीरिक अवयवों की दोषपूर्ण क्रिया का चिकित्सा-शास्त्रीय नाम "मन:कायिक बीमारियां" हैं। इसलिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि शारीरिक स्वास्थ्य को सुचारु अवस्था में बनाए रखने के लिए मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को सुचारु अवस्था में बनाए रखना अति आवश्यक है।

हमारे विचार और व्यवहार न्यूनाधिक रूप में हमारी भावनाओं से प्रभावित होते ही हैं। प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, प्रतिशोध, स्वार्थ और परोपकारिता आदि—ये सारी वृत्तियां हमारे आचरणात्मक ढांचों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

हमारे मस्तिष्क का वह हिस्सा जो मुख्यत: हमारी वृत्तियों से सम्बन्धित है, उसे "लिम्बिक (भावना) तंत्र" कहा जाता है। यह एक संघटित व्यवस्था है जिसमें चेतक (थेलेमस), अवचेतक (हाइपोथेलेमस), (देखे चित्र नं. ४) मस्तिष्क का जालीदार रचना वाला हिस्सा, प्रमस्तिष्क के प्रान्तस्था का भावना-विभाग तथा कुछ अन्य मस्तिष्कीय हिस्से हैं।[१]

भावना-तंत्र का कार्य

हमारी मानसिक दशाओं एवं वृत्तियों को रंजित करने वाला तंत्र भावनातंत्र ही है। इस तंत्र का कार्य भावनात्मक स्वास्थ्य के सन्तुलन को बनाए रखना है। क्षुधा, कामवासना, खतरा, धमकी या ऐसी ही कोई चिंता अथवा निराशा पैदा करने वाली वृत्ति—इन सब मानसिक असंतुलन पैदा करने वाली परिस्थितियों में भी मानसिक स्वास्थ्य को संतुलित बनाए रखने का काम इस तंत्र का है, क्योंकि यह ऐसी गड़बड़ी के निमित्त को पकड़ सकता है। इस प्रकार की गड़बड़ियों को पहिचानने के लिए यह तंत्र कुछ ऐसे संकेतों को प्रयुक्त करता है जो उच्च मस्तिष्क की समस्याओं को पकड़ने में और उनको समाहित कर संतुलन को पुन: स्थापित करने में सहायता करते हैं।

---

१. पटीय क्षेत्र, अश्वमीन क्षेत्र तथा कताम नामक हिस्से।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

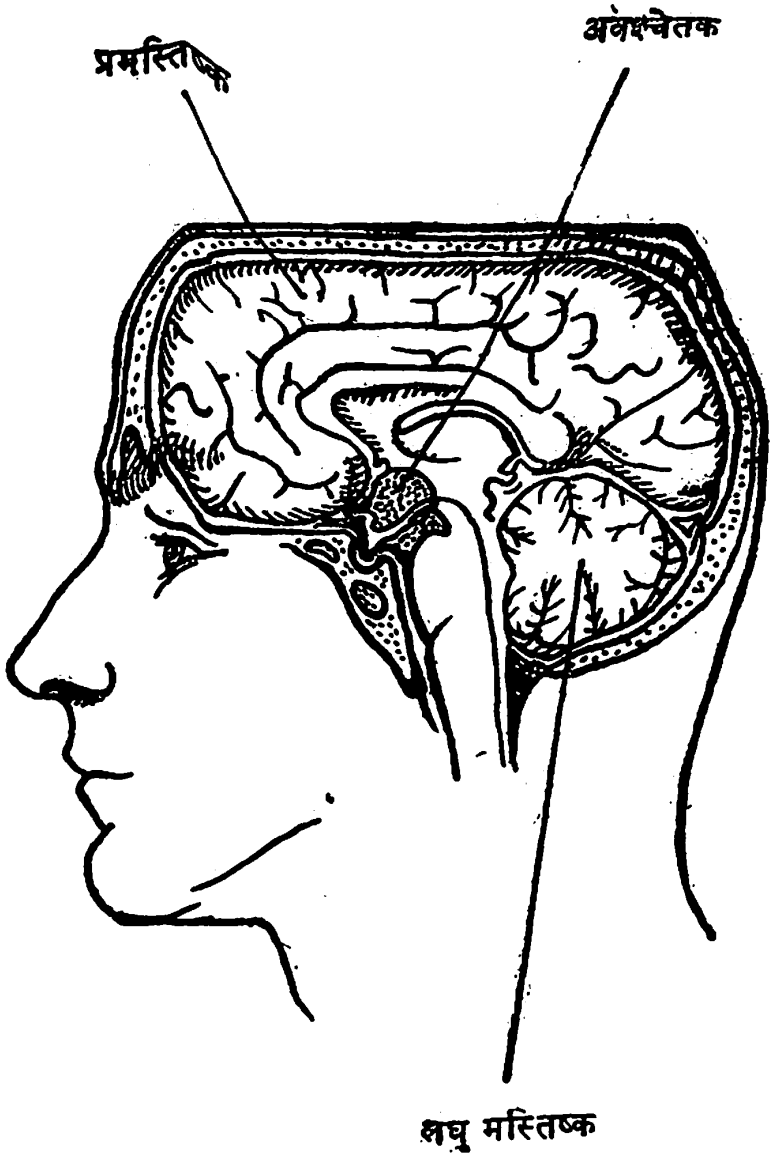

चित्र नं. ३ मस्तिष्क में अवचेतक (hypothalamus) का स्थान।

अन्य प्राणियों में भावना-तंत्र की कार्यप्रणाली संज्ञाओं के माध्यम से संचालित होती है। ये संज्ञाएं वातावरण से इन्द्रियों द्वारा गृहीत सूचनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप होती हैं। ये संज्ञाएं बौद्धिक चेतना से शून्य और अपने आप (यान्त्रिक रूप में) होती हैं। क्षुधा, कामवासना, क्रोध, भय और ममत्वभाव—ये

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मौलिक मनोवृत्तियां हैं, जो सहज होती हैं, उन्हें सिखाया नहीं जाता। ये केवल संवेदन ही पैदा नहीं करती, वरन् इच्छापूर्ति के अनुरूप प्रवृत्ति करने को भी प्राणी को बाध्य करती हैं। अन्य प्राणी भोजन, मैथुन, लड़ाई आदि प्रवृत्तियों को केवल वृत्तियों के आधार पर जीवन भर करते रहते हैं। मनुष्य अपनी उच्चस्तरीय मस्तिष्कीय क्रिया से निष्पन्न विवेक (बौद्धिक चेतनासहित) और विज्ञान (विद्या) को अधिक महत्त्व दे सकता है। मनुष्य भी क्रोधातुर, क्षुधातुर और कामातुर हो जाता है। फिर भी अपनी प्रवृत्ति का परिष्कार कर सकता है। विवेक-चेतना के द्वारा वह अपनी वृत्तियों के आवेगों की तीव्र मांग के प्रति उद्भूत होने वाली प्रतिक्रिया को संयमित कर सकता है। यह विवेक-चेतना उच्चस्तरीय मस्तिष्क के विवेकपूर्ण निर्णयों का परिणाम है। मनुष्य में कुछ ऐसी प्रतिक्रियात्मक भावधाराएं भी हैं जो केवल मौलिक मनोवृत्तियों का परिणाम न होकर विद्या और विज्ञान (सीखे हुए ज्ञान) का परिणाम भी है। ये भावधाराएं और मौलिक मनोवृत्तियां एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। कभी ये भावधाराएं मौलिक मनोवृत्ति के आवेग को पुष्ट करती हैं तो कभी उसको क्षीण करती हैं। इस प्रकार कभी-कभी भावना-तंत्र (लिम्बिक सिस्टम) से उद्भूत वृत्तियों के आवेग का हमारी विवेक-चेतना के साथ संघर्ष हो जाता है। भावनातंत्र और विवेक चेतना के संघर्ष की नैरन्तरिक पुनरावृत्ति से ऐसे द्वन्द्व पैदा होते हैं जो अन्ततोगत्वा मनःकायिक बीमारियों के रूप में व्यक्त होते हैं।

मानव की विलक्षण क्षमता

प्राणी-विकासवाद के सिद्धान्तानुसार मानवजाति विकास का चरम शिखर है। मानवीय मन और व्यक्तित्व अपने आप में बेजोड़ हैं और प्राणी-जगत् का उच्चतम विकास है। यह सत्य है कि मनुष्य भी अनेक संदर्भों में अन्य प्राणियों जैसा ही है। पर कुछ एक मौलिक मानवीय विलक्षणताओं के कारण वह एक बहुत ही असाधारण और अद्वितीय प्राणी बन जाता है। उनमें से दो विलक्षणताएं अन्य की अपेक्षा हमारी प्रस्तुत चर्चा के संदर्भ में अधिक उल्लेखनीय हैं। उनमें से पहली विलक्षणता है—मनुष्य की विवेक-चेतना। इसी के कारण वह ऊहापोहपूर्वक चिन्तन कर सकता है तथा तर्क-संगत निर्णय ले सकता है। मनुष्य की दूसरी विलक्षणता है—उसकी वह क्षमता जिसके द्वारा वह एक पशु की तरह जड़ विभागीकरण-युक्त मानस और व्यवहार वाला न होकर अपनी मानसिक क्रियाओं का एकीकरण कर सकता है। अन्य प्राणियों का व्यवहार मूलतः अयौक्तिक एवं अबौद्धिक (विवेकहीन) होता है क्योंकि वे अपनी वृत्तियों को बदल नहीं सकते। मानवीय व्यवहार प्राणी-व्यवहार की तुलना में वृत्तियों की विवेक शून्य एकाग्रता से अधिक युक्त होने के कारण अधिक तर्क-संगत होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मनुष्य वृत्तियों की जड़ता (अपरिवर्तनीयता) का परित्याग कर सकता है। साथ ही उसको एक ऐसी संयोजन-प्रणाली उपलब्ध है जिससे वह जानने, संवेदन करने या संकल्प करने के क्षेत्र में किसी भी एक प्रवृत्ति या मनोदशा का दूसरी प्रवृत्ति या मनोदशा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इन दो उपलब्धियों की बदौलत मानव अपनी मानसिक क्रियाओं का एकीकृत नियमन कर सकता है।

मानसिक द्वन्द्वों से विकृतियों की उत्पत्ति

दुर्भाग्य यह है कि मनुष्य की उक्त (मानसिक क्रियाओं का एकीकृत नियमन करने की) क्षमता हमेशा उसके लिए केवल वरदान ही सिद्ध नहीं होती। मानसिक एकीकरण से प्राप्त लाभ के साथ भावात्मक संघर्ष और अपरिहार्य तनाव भी जुड़े हुए होते हैं। संघर्ष की उत्पत्ति दो प्रमुख किन्तु परस्पर विरोधी आवेगों के बीच टकराव से होती है। ये आवेग अपनी-अपनी वृत्ति के अनुरूप प्रवृत्ति को करने की मांग करते हैं। संघर्ष का दूसरा कारण यह भी हो सकता है—भावनातंत्र के आग्रह और विवेक-चेतना के निर्णय के बीच असामंजस्य खड़ा हो जाता है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। ऐसे संघर्ष का परिणाम यह होता है कि या तो व्यक्ति बिल्कुल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है या मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाता है। मनुष्य के अलावा दूसरे प्राणी इस प्रकार के मानसिक तनाव के शिकार नहीं बनते क्योंकि उनके क्रियातंत्र पर एक समय में केवल एक ही आवेग अधिकार कर सकता है। खेद की बात है कि मनुष्य के पास मानसिक तनाव से बचने का ऐसा कोई सरल रास्ता नहीं है। इसका कारण यह है कि मनुष्य के चेतन मन में एक अव्यक्त अवचेतन हिस्सा विद्यमान है। इस प्रकार मनुष्य एकमात्र ऐसा प्राणी है जो कि खतरनाक स्नायु-रोग (पागलपन) का शिकार हो सकता है।

उक्त मानसिक संघर्ष की तीव्रता को कम करने का जो मार्ग प्रकृति से मनुष्य के पास उपलब्ध है, वह है—दो परस्पर संघर्षरत वृत्तियों में से एक का दमन कर उसे अचेतन (या अवचेतन) मन में निर्वासित कर देना। निष्कासन की यह सारी की सारी प्रक्रिया ही अपने आप में नितान्त अचेतन (या अवचेतन) क्रिया है। यह स्वतः ही घटित होती है, जिसमें चेतन मन (या इच्छा) को भाग लेने का कोई अवकाश नहीं रह जाता। अवचेतन मन की अन्धेरी काल कोठरी में पड़ी हुई यह दमित वृत्ति कुण्ठा का रूप ले लेती है, फिर भी उसमें एक प्रकार का हठाग्रह होता है। इसका रूपान्तरण उन अपरिष्कृत आवेगों के रूप में हो जाता है जो हिंसक आक्रमण और क्रूरता जैसी प्रवृत्तियों को जन्म देता है और यह सारी प्रक्रिया चेतन मन की अवगति के बिना होने के कारण और अधिक खतरनाक बन जाती है। मनोवैज्ञानिक इस प्रक्रिया को "दमन" की संज्ञा देते हैं और यही निर्मूल (अकारण) भय, घृणा, क्रूरता, प्रतिशोध और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तत्सदृश अन्य भावात्मक विकृतियों एवं उपद्रवों की जननी बन जाती है। मानसिक (आन्तरिक) संघर्षों की पुनरावृत्ति और लगातार (आदतन) दमन चेतन मानस में गहरे, चिरस्थायी एवं दुष्परिमार्जनीय विकृत अन्तर्भाव को जन्म देता है और यह विकृत मनोदशा व्यक्ति के क्रूरतापूर्ण, प्रतिशोधात्मक एवं संग्रामशील आचरण व व्यवहार के लिए जिम्मेदार होती है, जो अन्ततोगत्वा व्यक्ति के भावात्मक स्वास्थ्य के संतुलन को अस्तव्यस्त कर देती हैं। स्नायु-रोग, मनोविक्षिप्ति, खण्डित मनस्कता तथा उन्माद जैसे बहुत सारे मानसिक रोगों की जड़ इस भावात्मक संकटावस्था में निहित है। मानसिक रोगों के कितने ही प्रकार व्यक्ति को किसी भी कार्य के लिए अयोग्य बना देते हैं और कभी-कभी तो उसे आत्महत्या करने पर उतारू कर देते हैं। कुछ अन्य प्रकार के रोग मनःकायिक बीमारियों के रूप में व्यक्त होते हैं, जो आगे चलकर भयंकर या असाध्य शारीरिक रोग या व्याधि का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार सभी बीमारियों के मूल कारण की खोज हमें भावात्मक स्वास्थ्य के असंतुलन तक पहुंचा देती है तथा उनसे मुक्त होने का उपाय विवेक के विकास में पाया जाता है।

कारण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हाल में कुछ वर्षों में हुए 'अन्तःस्रावी-ग्रन्थि-शास्त्र' के अनुसन्धान द्वारा यह स्थापित हो चुका है कि हमारी सारी वृत्तियां और उन्हें उभारने वाले बल हार्मोन और तन्त्रिका-हार्मोन नामक रासायनिक सन्देशवाहकों (स्रावों) के संश्लेषण के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। ये हार्मोन और तन्त्रिका-हार्मोन क्रमशः अन्तःस्रावी ग्रंथि-तंत्र (देखें चित्र नं. ५) और तंत्रिका-तंत्र की विशिष्ट कोशिकाओं द्वारा स्रावित होते हैं। इन शक्तिशाली रासायनिक स्रावों की सूक्ष्म मात्राएं रक्त-प्रवाह में छोड़ी जाती हैं। ये स्राव न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रियाकलाप में भाग लेते हैं, अपितु व्यक्ति की मनोवृत्तियों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। हमारी मौलिक मनोवृत्तियां, जो हमारी सहजन्मा हैं, प्रकृति द्वारा जीवन को टिकाए रखने तथा उसका संरक्षण करने के लिए सहायक तत्त्व के रूप में उपलब्ध हैं, किन्तु तीव्र और परस्पर विरोधी वृत्तियां न केवल व्याकुल बनाने वाली होती हैं, पर कभी-कभी हानिकारक भी सिद्ध होती हैं। जैसे हम ऊपर देख चुके हैं, इन वृत्तियों का अवचेतन या अचेतन स्तर पर दमन और भी अधिक खतरनाक हो सकता है। इसलिए भावनात्मक संतुलन को स्थापित करने के दमन की पद्धति का कोई विधायक मूल्य नहीं है। खेलकूद या क्रीड़ा से प्राप्त मनोरंजन उभरी हुई वृत्तियों के निर्गम का एक द्वार बन सकता है। उदाहरणतः फुटबाल का खेल या पर्वतारोहण की क्रीड़ा क्रोध के आवेग को बाहर निकालने का अच्छा माध्यम बन सकती है। काम-वासना के आवेग का उदात्तीकरण, चित्रकला, संगीत, शोध-कार्य या अनुसंधान जैसी उच्चस्तरीय

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

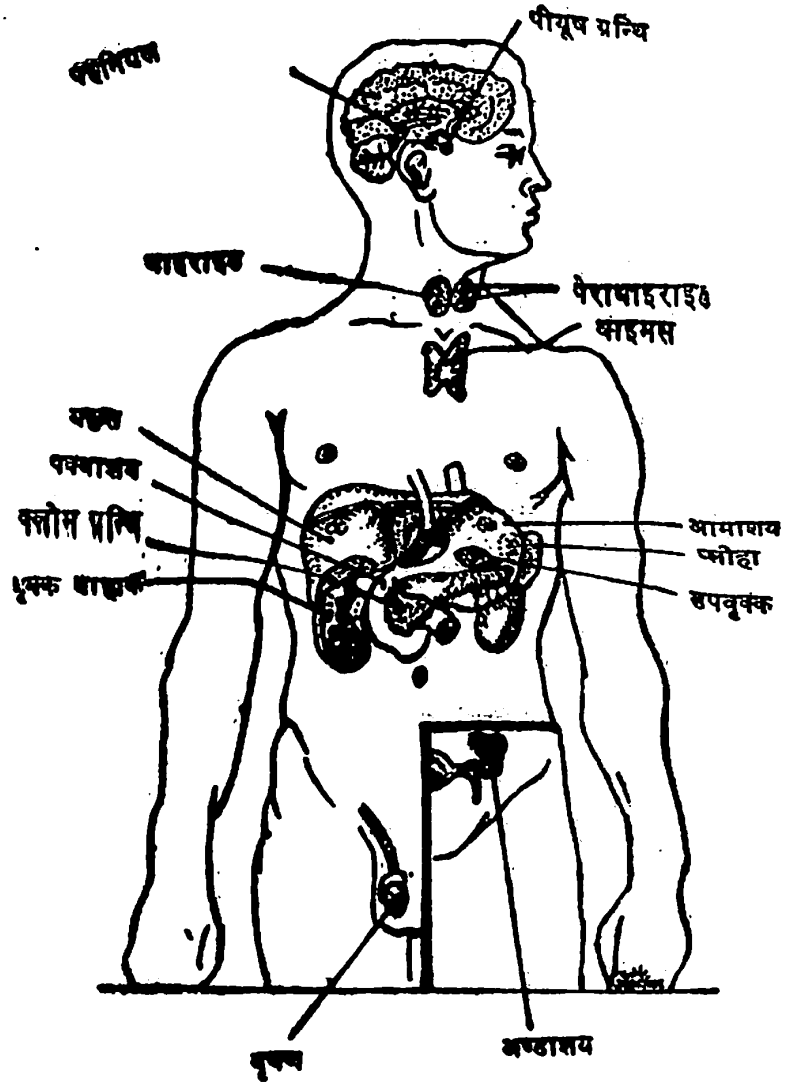

शरीर के विभिन्न भागों में स्थित अन्तःस्रावी एवं बहिःस्रावी ग्रंथियां

रचनात्मक प्रवृत्तियों के रूप में किया जा सकता है। आक्रामक आवेगों को चिन्तनपूर्वक एक ही रचनात्मक दिशा में मोड़ देना अथवा काम-ऊर्जा का ऊच्चतर रचनात्मक प्रवृत्तियों में उदात्तीकरण मूल्यवान् है और दमन के विष के प्रतिरोध में एक कल्याणकारी उपाय है। पर ये उपाय मानसिक विकृतियों

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को पैदा करने वाले संघर्षों की पुनरुत्पत्ति की रोकथाम करने में स्थायी रूप से सक्षम नहीं हैं। विवेकपूर्ण चिन्तन और यौक्तिक निर्णय मनरूपी काल कोठरी में जाकर विस्फोटक रूप धारण करने से रोक सकता है। भावनात्मक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए सबल विवेक चेतना और दृढ़ यौक्तिक निर्णायकता के विकास की आवश्यकता है। विवेक चेतना, जो कि मानव-जाति का ही एक विलक्षण गुण है का क्रमिक विकास ही विवेकपूर्ण व्यवहार को विकृत बनाने वाले दमनकारी आवेगों का रेचन कर सकता है।

ऊपर बताए गए अनुसार मनुष्य में पैदा होने वाले सभी आवेगों, आवेशों, वासनाओं और वृत्तियों के शक्तिशाली बलों के प्रमुख जनक हैं—अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव। भावनात्मक दबाव, चिन्ता और संघर्ष की स्थिति में होने वाले मनुष्य व्यवहार का नियंत्रण विभिन्न हार्मोनों के संश्लेषण से होता है। अतः भावात्मक बीमारियों (उपाधियों) का उपचार हार्मोनों के रूपान्तरण में निहित है।

. . . . . और उपचार

ध्यान-साधना के व्यवस्थित अभ्यास के द्वारा व्यक्ति को अपने तंत्रिका-तंत्र की विद्युत्—क्रिया में परिवर्तन लाने की क्षमता प्राप्त होती है। साथ ही उसे अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र के स्रावों के रासायनिक संश्लेषण को रूपान्तरित करने की क्षमता भी प्राप्त होती है। "बायोफीडबैक" एवं अन्य मापक वैज्ञानिक उपकरणों से अब यह सिद्ध हो चुका है। इससे पूर्व तक ध्यान साधना केवल प्राच्य रहस्यवाद की ही एक प्रक्रिया मानी जाती थी। पर अब यह बात वैज्ञानिक जांच से निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि ध्यानावस्था से हमारे शरीर में जो लक्षण पैदा होते हैं, वे दबाव या भावनात्मक गड़बड़ की स्थिति में पैदा होने वाले लक्षणों से ठीक विपरीत होते हैं। उच्च रक्त-चाप और अन्य मनःकायिक बीमारियों की उत्पत्ति दबाव-प्रणाली के बार-बार उत्तेजित होने के कारण होती है। इसलिए ध्यान-साधना ऐसी बीमारियों को रोक सकती है और दूर भी कर सकती है। प्रेक्षा-ध्यान का अभ्यास अयौक्तिक प्रक्रिया, भावावेश या क्रियाकांड रूप धर्म नहीं है, किन्तु मनोविश्लेषण की एक सुविचारित मानसिक प्रक्रिया है। वस्तुतः तो यह एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा है, जिसके द्वारा उन आवेशों को समाप्त किया जा सकता है जो मानसिक विक्षिप्तता और विवेकशून्य व्यवहार या आचरण आदि—आधि, व्याधि, उपायों का जन्मदाता है। जब तक इनका बल समाप्त नहीं किया जाता, तब तक वे आधि, व्याधि, उपाधि की त्रिपुटी को उत्पन्न करते रहेंगे। सुख्यात मनोवैज्ञानिक विलियम जैम्स के शब्दों में, "ध्यान-साधना आन्तरिक अपूर्णता का उपचार तथा आन्तरिक विसंगति को कम करने की प्रक्रिया है।"

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati

For Personal & Private Use Only

https://books.jvbharati.org

परिशिष्ट १

शरीर में उपयोगी कुछ महत्त्वपूर्ण खनिज

खनिज	खाद्य-स्त्रोत	दैनिक खपत	कार्य	कमी का परिणाम
केल्शियम	दूध, चीज़, पत्ती वाली सब्जियां	१ ग्राम	अस्थि तथा दांतों का निर्माण, खून का थक्का जमाना, मांसपेशियों में आकुचन, स्नायुओं का संवहन।	सूखा (रेकेट्स), अस्थियों में खनिजों का अल्पीकरण।
फास्फोरस	दूध, चीज़, पनीर	१.५ ग्राम	अस्थि तथा दांतों का निर्माण, ऊर्जा-चयापचय, स्नायु एवं मांसपेशियों की क्रियाएं।	अस्थियों में खनिजों का अल्पीकरण, चयापचयिक क्रियाओं में गड़बड़ी।
पोटेशियम	अधिकांश प्रकार के खाद्य पदार्थ	१ से २ ग्राम	स्नायु एवं मांसपेशियों की क्रियाएं	हृदय की क्रियाओं में गड़बड़ी, स्नायुओं की गड़बड़ी।
सोडियम	अधिकांश प्रकार के खाद्य पदार्थ, नमक	२.५ ग्राम	अम्ल-प्रत्यम्ल-सन्तुलन, तरलांश संतुलन	दुर्बलता, ऐंठन, अतिसार, जल का अल्पीकरण।
लोहा	अखंडित गेहूं, सेम, मटर, पालक, आलूचा	१८ मिलीग्राम[१]	हेमोग्लोबीन, मायोग्लोबीन और किण्वकों का अभिन्न हिस्सा	रक्ताल्पता, पाचनतंत्रीय गड़बड़ी

१. मिलीग्राम = ग्राम का हजारवां भाग

खनिज	खाद्य-स्रोत	दैनिक खपत	कार्य	कमी का परिणाम
मेग्नेशियम	हरी सब्जियां	४०० मिली ग्राम	स्नायु-मांसपेशीय संदेशवाहन, ग्लुकोज और ए.टी.पी. के चयापचय का एक अनिवार्य अंग	अति उत्तेजनशीलता, रक्तवाहिनियों का विस्तारीकरण, अधिकता होने पर स्नायुओं में वहनविरोध।
तांबा	अधिकांश खाद्य पदार्थ	२ मिलीग्राम	हेमोग्लोबीन का संश्लेषण	रक्ताल्पता।
मैंगनीज़	सामान्य भोजन	अज्ञात	किण्वकों को सक्रिय करता है	वन्ध्यीकरण, मासिक स्राव में अनियमितता।
जस्ता	अधिकांश खाद्य पदार्थ	१.५ ग्राम	किण्वकों का एक हिस्सा, कार्बनडाई-ऑक्साइड के संवाहन एवं पाचन-क्रिया में योगदान	विकास एवं लैंगिक परिपक्वता में मन्दता, चर्मरोग।
कोबाल्ट	अधिकांश खाद्य पदार्थ, नल का पानी	१ मिलीग्राम	विटामिन बी-२ का अनिवार्य अंग	रक्ताल्पता।
क्लोरीन	अधिकांश खाद्य पदार्थ, नमक	३३५ मिलीग्राम	हाइड्रोक्लोरिक एसिड का क्लोराइड अंश	तरलांश-संतुलन में गड़बड़ी।
आयोडीन	आयोडाइज्ड नमक	२५ मिलीग्राम	थाइराइड के हार्मोनों का निर्माण	थाइराइड की क्रिया में कमी, गलगण्ड।
क्लोरीन	पेयजल	अज्ञात	दांतों और अस्थियों को मजबूत बनाता है	दांतों का रोग, कमजोर अस्थियां।

© Jain Vishva Bharati
For Personal & Private Use Only
https://books.jvbharati.org

© Jain Vishva Bharati

For Personal & Private Use Only

https://books.jvbharati.org

परिशिष्ट २

शरीर में उपयोगी कुछ महत्त्वपूर्ण विटामिन

विटामिन	खाद्य-स्रोत	दैनिक खपत	कमी का परिणाम
ए (रेटिनोल)	गाजर, फल, साग-सब्जियां	५००० आई.यू.[१] = ३ मिलीग्राम	रतौंधापन
बी-१ (थियामिन)	खमीर, अखंडित धान्य (चोकर या छिलके सहित) दूध, फलीदार शिम्ब, गिरीदार फल	१.५ मिलिग्राम	भूख में कमी, अपच, बेरी-बेरी नामक बीमारी।
बी-२	दूध, चीज़, खमीर, अंकुरित गेहूं, पत्ती वाली सब्जियां	१.७ मिलीग्राम	चर्मरोग, त्वचा-शोथ, जिह्वा-शोथ, मुंह के कोनों का फटना।
नियासिन	खमीर, अंकुरित गेहूं, फलीदार शिम्ब, दूध, मूंगफली	२० मिलीग्राम	पागलपन, अतिसार, चर्मरोग।
पेण्टोथेनिक एसिड	खमीर	१० मिलीग्राम	विकास में रुकावट, सफेद बाल, सूनापन, पैरों में दर्द।
बी-६	खमीर, अंकुरित गेहूं, दूध	२ मिलीग्राम	रक्ताल्पता, चर्मरोग, मूर्च्छा, कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न रोगों की संभावना।

१ आई. यू. = अन्तर्राष्ट्रीय यूनिट

विटामिन	खाद्य-स्रोत	दैनिक खपत	कमी का परिणाम
बायोरिन	खमीर, दूध, शाक-सब्जी, गिरीदार फल, धान्य	०.३ मिलीग्राम	चर्मरोग, मांसपेशियों में दर्द।
फोलिक एसिड (सायएनोकोबाल्मिन)	वनस्पति, पूरे दाने वाले धान्य	४ मिलीग्राम	रक्ताल्पता, विकास में मन्दता।
बी-१२	दूध	६ माइक्रोग्राम [१]	खतरनाक रक्ताल्पता।
सी (एस्कोर्बिक एसिड)	नीबू वंशीय फल, टमाटर, पत्तीवाली सब्जियां	६० मिलीग्राम	स्कर्वी, वजन में कमी, दुर्बलता, दांतों का गिरना, अस्थि-भंगुरता, जोड़ों में दर्द।
डी-२	दूध, मक्खन	४०० आई.यू.	सूखा (रिकेट्स), अस्थियों में कोमलता और भंगुरता आदि।
डी-३	दूध, मक्खन	२० माइक्रोग्राम	अधिक मात्रा के परिणाम— गुर्दे में पथरी, कोमलता, तंतुओं में कैल्शियम का जमाव आदि।
ई	अंकुरित गेहूं, तेल, दूध, मक्खन,	३० आई.यू.	
के	पत्तीवाली सब्जियां, टमाटर	अज्ञात	रक्त का थक्का जमने में देरी, हेमरेज (रक्त-वाहिनी का फटना)।

१. माइक्रोग्राम = ग्राम का दसलाखवां भाग

© Jain Vishva Bharati
For Personal & Private Use Only
https://books.jvbharati.org

जीवन विज्ञान ग्रंथमाला में प्रकाशित पुस्तकें

प्रेक्षाध्यान : प्राण–विज्ञान	–गणाधिपति तुलसी
प्रेक्षाध्यान : आधार–स्वरूप	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : शरीर विज्ञान	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : श्वास–प्रेक्षा	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : चैतन्य–केन्द्र–प्रेक्षा	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : लेश्या–ध्यान	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : अनुप्रेक्षा	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : आहार विज्ञान	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति	– आचार्य महाप्रज्ञ
प्रेक्षाध्यान : स्वास्थ्य विज्ञान, भाग १–२	– मुनि महेन्द्र कुमार जेठाभाई झवेरी
प्रेक्षाध्यान : आसन–प्राणायाम	– मुनि किशनलाल
प्रेक्षाध्यान : यौगिक क्रियाएं	– मुनि किशनलाल
प्रेक्षाध्यान : एक परिचय	– मुनि किशनलाल
प्रेक्षाध्यान : प्राण–चिकित्सा	– साध्वी राजीमती
प्रेक्षाध्यान : स्वर–साधना	– साध्वी रमाकुमारी
प्रेक्षाध्यान : आगम और आगमेतर स्त्रोत	– मुनि धर्मेश

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज.)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org